प्रवर्तिनी सज्जन श्री जी महाराज के दीक्षा स्वर्ण जयन्ती महोत्सव के शुभ अवसर पर

☐ सज्जन भजन भारती

☐ अर्थ सौजन्य :

सिवानी निवासी श्री केशरीमलजी सा. वभूतमलजी सा. छाजेड़

शेरगढ़ निवासी वागमलजी सज्जनराजजी लूनिया

☐ प्रकाशक :
पुण्य-सुवर्ण-ज्ञानपीठ, जयपुर

☐ प्राप्ति स्थान :
शिवजीराम भवन
मोतीसिंह भोमियों का रास्ता
जौहरी बाजार, जयपुर-302003

☐ जैन युवा परिषद
3978, एम. एस. वी. का रास्ता
जयपुर-302003

मूल्य : मात्र ५ रुपया

संजय सुराना के निर्देशन में कामधेनु प्रिंटर्स एण्ड पब्लिशर्स
A-7, अवागढ़ हाउस, एम. जी. रोड, आगरा-282002
फोन : 68328

समर्पण

जिनकी वाणी में आगम का अमृत प्रवहमान था
जिनका हर वचन, जीवन ज्योति को
प्रज्ज्वलित-प्रकाशित करने
में समर्थ है।

उन

परम श्रद्धास्पद अनुयोगाचार्य

श्री जिनकान्तिसागर सूरीश्वर जी म.

की

पुनीत स्मृति स्वरूप

वीर शासन सेविका

प्रवर्तिनी सज्जनश्री

भक्ति-वैराग्य-ज्ञान की त्रिवेणी

संसार में हजारों लाखों में कोई एक ऐसा विरला व्यक्तित्व मिलता है जो अपने नाम के अनुरूप ही उत्तम शील-स्वभाव से युक्त हो। नाम गुण की समानता संसार की दुर्लभतम वस्तुओं में एक है। मैं तो कहूंगा विश्व के सप्त आश्चर्यों के वाद यह आठवाँ आश्चर्य है कि व्यक्ति "जैसा नाम वैसा काम" को सार्थक कर सके।

हमारा जैनश्रीसंघ वहुत ही सौभाग्यशाली है। जिनको प्रवर्तिनी आगमज्योति सज्जनश्री जी महाराज जैसी विरल दिव्यात्मा का शुभ संयोग प्राप्त हुआ है, जो नाम से तो सज्जन हैं, किन्तु अपने उदात्त चरित्र गुणों से सज्जनोत्तम कही जा सकती है। इनकी विनम्रता, स्वभावगत मृदुता, आगम वाणी के प्रति सर्वात्मना समर्पित निष्ठा और सतत-स्वाध्याय ध्यान जप में तल्लीनता देखकर मन सहज ही श्रद्धा से विनत हो जाता है।

आपकी वाणी में ज्ञान एवं अनुभव की गूँज है। तो आपकी काव्य कृतियों में भक्ति की रसधार प्रवाहित है। आपकी रचित कोमल कान्त-मधुर पदावली जव आपके ही मधुर स्वर में सुनते है तो मन मुग्ध-मुग्ध हो उठता है। भक्ति रस का अमृत समीर वहने लगता है।

प्रस्तुत पुस्तक में प्रवर्तिनी श्री जी के द्वारा रचित भक्ति-वैराग्य-ज्ञान की त्रिवेणी रूप भजनों का संकलन है जो पाठकों को सदा आनन्द-विभोर करता रहेगा।

अक्षय तृतीया
जयपुर

—गणि मणिप्रभसागर



आगम ज्योति प्रवर्तिनी सज्जनश्रीजी म.

प्रकाशकीय

"सज्जन भजन भारती" आगम ज्योति, आशुकवयित्री पूज्य प्रवर्तिनी श्री सज्जनश्री जी म०सा० के भक्ति प्रवण मधुर मानस से उद्भूत, कोमल-कान्त-पदावली में गुम्फित एक सुमधुर काव्यकृति है।

ये भजन सरल, सुबोध और सुसंस्कृत हैं। मन को सहज ही भक्ति रस में डुबोकर श्रोता को आकर्षित करने वाले हैं। इनकी भव्यभावना व मधुर शब्दावली है। भटकते मानस को कल्याणकारी दिशा में नया मोड़ देने वाले हैं।

हमें आशा है कि इन्हें खूब रुचि से पढ़ा व गाया जायेगा। पूज्य गणिवर्य श्री मणिप्रभसागर जी म० सा० की निश्रा में पूज्य प्रवर्तिनी श्री सज्जनश्री जी म० सा० के दीक्षा स्वर्ण जयन्ती उपलक्ष में पूज्य दर्शनाचार्य श्री शशिप्रभाजी म० सा० एवं श्री सौम्यगुणाश्री जी की सद्प्रेरणा से प्रस्तुत पुस्तक का प्रकाशन हो रहा है।

प्रस्तुत पुस्तक में जिन्होंने आर्थिक सहयोग प्रदान किया, उन्हें बहुत-बहुत साधुवाद !

—पुण्य-सुवर्ण ज्ञानपीठ

प्रस्तुति

कला रसज्ञों ने कहा है—'नादस्तु पंचमो वेद:'—नाद (संगीत) पांचवां वेद है। संगीत का जीवन की हर गति-प्रवृत्ति के साथ सम्बन्ध है। संगीत के सुर मानस की कोमल भावनाओं को सहलाते हैं, दुलराते हैं, जागृत और उत्प्रेरित करते हैं। संगीत मुर्दों में जान फूंकता है। बाल-वृद्ध-युवा, योगी-भोगी-रोगी, सन्त-महन्त-कन्त, सभी को संगीत प्रिय लगता है। संगीत के सुरों के साथ तन्मयता, तल्लीनता की अन्तर् तन्द्रा सी छाने लगती है।

गीत के मधुर स्वर-लय की धुन में जब अध्यात्म, भक्ति-प्रवण स्वर-शब्दों की संयोजना होती है तो वह 'संगीत' बन जाता है और उसका सीधा सम्बन्ध मानव आत्मा के साथ जुड़ जाता है। गीतों में प्रेम-गीत भी होते हैं, विरह-गीत भी होते हैं, किन्तु भक्ति-गीत सर्वोत्तम गीत हैं। भक्ति-गीत में अन्तर्मुखीन चेतना स्वयं सहज मुखरित हो जाती है और एक अपूर्व अनिर्वचनीय आनन्द की रसानुभूति होने लगती है। भक्ति-गीत में विभोर मानस प्रभु की दिव्य-रम्य अनिर्वचनीय अनुभूति के साथ एकाकार होकर कुछ क्षण के लिए प्रभुमय बन जाता है, उसकी भावनाओं में प्रभु की छवि उतर आती है। आज भी "सूरदास" और "मीरा" के भक्ति-रस निमग्न पदों की धुन किस हृदय को आंदोलित नहीं कर देती। आनन्दघनजी के भक्ति-पद गाते-सुनते ही चेतना में आज भी निर्गुण ईश्वर की सगुण अनुभूति होने लगती है। भक्तिरस के साथ ही वैराग्यरस, ज्ञानरस और उपदेशरस की लय भी जब संगीत के स्वरों में अनुगुंजित होती है तो जीवन में

एक नया उत्साह, नई उमंग और आध्यात्मिक ऊर्ध्वारोहण का नया संकल्प जागता है। यही कारण है कि सन्त कवियों ने सदा ही अपना उपदेश, अपना विचार और प्रभुभक्ति में भीने भाव, संगीत के सुरों में आवद्ध करके व्यक्त किए हैं। जिन्हें सुनते ही श्रोता का मन-मस्तिष्क झंकृत होकर रस मग्न हो जाता है। जैसे—श्रावण की झड़ी से धरती का अंग-अंग रस मग्न होकर अंकुरित—फलित—पुष्पित हो उठता है, उसी प्रकार सन्तों की वाणी से संगीत की धुन में भक्ति, वैराग्य की शव्दावली सुनकर भव्य मानस लहलहा उठता है।

कोई कवि हो, फिर वह संगीतकार भी हो, सुर-संधायक भी हो, फिर कवि गायक सन्त हो, और कवि—सन्त—गायक—भक्त भी हो तो फिर कहना ही क्या, जैसे सोने की थाली में खीर-खांड का मधुर भोजन माँ के ममतामय हाथों से परोस दिया गया है। यही सव दुर्लभ संयोग मिला है पूज्य प्रवर्तिनी सज्जनश्री जी महाराज के भक्ति वैराग्य, प्रधान भजनों में; गीत-संगीत में। पूज्य प्रवर्तिनी श्रीजी जन्म-जात कवयित्री हैं। आठ वर्ष की कोमल वय में भी उनके अन्तःकरण से कविता के छन्द फूट पड़े थे। १०-१२ वर्ष की वय में तो वे कविता, भजन वनाकर मधुर स्वर से गाती थीं, तव श्रोतागण झूमने लग जाते थे। आपके पिताश्री गुलाबचन्द जी लूणिया स्वयं एक भक्त कवि और मधुर गायक थे, इसलिए पिताश्री की प्रतिभा और स्वर-माधुरी आप श्री को विरासत में ही प्राप्त हुई है। अध्ययन के वाद तो आपश्री की काव्यकला में भी निखार आता गया। भाषा में प्रसादगुण, प्राञ्जलता और तुकों में सहजता हृदयस्पर्शिता देखकर लगता है, कोई रस सिद्ध सन्त कवि अपनी मधुर-मधुर भावनाओं को कोमल-कान्त पदावली में अभिव्यक्ति दे रहा है।

पूज्य प्रवर्तिनीश्री जी ने भक्तिरस में हजारों गीत-स्तवन-भजन लिखे हैं, जिनमें प्रभु-भक्ति की तल्लीनता का जादू भरा है।

समय-समय पर उपदेश प्रधान, वैराग्य प्रधान, तथा प्राचीन चरित्रों का गीतिमय गुम्फन करके आपश्री ने विशाल काव्य सर्जना की है, जिस पर विस्तार से समीक्षा और आकलन की आवश्यकता है।

प्रस्तुत पुस्तक सज्जन भजन भारती (२) में पूज्य गुरुवर्या के चौबीस तीर्थंकरों की स्तुति भक्ति के गीत, विविध प्रसंगों पर रचित कथा-गीत, सज्झाय, उपदेशिक स्तवन आदि पद्यों का संकलन है। इस संकलन से पाठक, श्रोताओं का हृदय अवश्य ही आनन्द विभोर होगा। इसी आशा के साथ····

—साध्वी शशिप्रभाश्री



अनुक्रमणिका

बृहद स्तवन चौबीसी

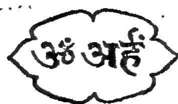
कथागीत विभाग

औपदेशिक सज्झाय





सज्जन भजन भारती



स्तवन चौबीसी

१. आदि जिन स्तवन

[तर्ज—मारवाड़ी—लोटन करवा की]

प्रभु ऋषभ जिनन्दा साँभलजो रे, व्हाला मुझ अरदास....।।टेर।।
काल अनादिनी प्रीतिडी जिनजी रे,
सुखकारी रे म्हारा ऋषभ जिनन्दा,
तोडीने रे करियुं मोक्ष मां वास,
प्रभु ऋषभ जिनन्दा .... ।। १ ।।
हूँ अधमा भवारण्य मां जिनजी रे,
जयकारी रे प्रभु ऋषभ जिनन्दा,
रखडीने वहु पामी कर्मों नी त्रास
प्रभु ऋषभ जिनन्दा .... ।। २ ।।
आवी प्रीति नहीं सुज्ञजननी रे,
मनहारी रे....प्रभु ऋषभ जिनन्दा,
ए नहीं प्रीति नी रीति छै खास
प्रभु ऋषभ जिनन्दा .... ।। ३ ।।
प्रीति तो एम पिछाणिये जिनजी रे,
शिवकारी रे प्रभु ऋषभ जिनन्दा,
आपे रे जेह मित्र ने सुखनो वास....
प्रभु ऋषभ जिनन्दा .... ।। ४ ।।

हूँ पण छूं अपराधिनी जिनजी रे,
सुखकारी रे, प्रभु ऋषभ जिनन्दा,
तुझ संग त्यागी कर्युं विषय विलास....
प्रभु ऋषभ जिनन्दा .... ॥ ५ ॥
विषय विष थीं मुंझाई ने जिनजी रे,
जयकारी रे, प्रभु ऋषभ जिनन्दा,
तुझ मलवा नुं न कर्युं कांइ प्रयास
प्रभु ऋषभ जिनन्दा .... ॥ ६ ॥
पुण्य उदय नर भव लह्यु जिनजी रे,
मनहारी रे, प्रभु ऋषभ जिनन्दा,
वलि लह्यु किञ्चिद् सम्यग्ज्ञान प्रकाश
प्रभु ऋषभ जिनन्दा .... ॥ ७ ॥
तुझ दर्शन पिण पामियुं जिनजी रे,
शिवकारी रे म्हारा ऋषभ जिनन्दा,
मुझने मलियुं सद्गुरु नो सहवास....
प्रभु ऋषभ जिनन्दा .... ॥ ८ ॥
तो पिण हूँ अभागिनी जिनजी रे,
सुखकारी रे, प्रभु ऋषभ जिनन्दा,
नवि कीधुं हजी निज सद्गुणनो विकास....
प्रभु ऋषभ जिनन्दा .... ॥९॥
पण उत्तमजन रीति ए जिनजी रे,
जयकारी रे, प्रभु ऋषभ जिनन्दा
शरणागत ने न करे तेह निराश....
प्रभु ऋषभ जिनन्दा .... ॥ १० ॥
चरण शरण प्रभु तुम तणो जिनजी रे,
मनहारी रे प्रभु ऋषभ जिनन्दा;

मुझने छै व्हाला त्हारी निश्चल आश····
प्रभु ऋषभ जिनन्दा ···· ···· ॥ ११ ॥
समरथ छो तमे तारवा जिनजी रे,
शिवकारी रे, प्रभु ऋषभ जिनन्दा,
हूं शा माटे जाऊँ अवरनी पास,
प्रभु ऋषभ जिनन्दा ···· ···· ॥ १२ ॥
विमल गिरी नो तू राजियो जिनजी रे,
सुखकारी रे प्रभु ऋषभ जिनन्दा,
तुझ दर्शन थी पामियु अति उल्लास····
प्रभु ऋषभ जिनन्दा ···· ···· ॥ १३ ॥
आनन्द रत्नाकर आप छो जिनजी रे,
जयकारी रे प्रभु ऋषभ जिनन्दा,
मुझ मनमाँ तुझ ज्ञान थी थाये उजास····
प्रभु ऋषभ जिनन्दा ···· ···· ॥ १४ ॥
ज्ञानोपयोग पसाय थी जिनजी रे,
मनहारी रे, प्रभु ऋषभ जिनन्दा,
सज्जन मांगे तुझ चरणों मां वास····
प्रभु ऋषभ जिनन्दा ···· ···· ॥ १५ ॥



२. अजित जिन स्तवन

[तर्ज—चाहे तारो या न तारो····]

दर्शन तुम्हारा जिनवर, मुझको भी अब दिखादो ।
भव का भ्रमण दया कर, मेरा भी अब मिटादो ॥ स्थायी ॥
विजया के नन्द प्यारे, जितशत्रु के दुलारे ।
मुक्ति का मार्ग प्रभुवर, मुझको भी अब बतादो ॥ १ ॥

अजितारि आप तो हैं, रहते हैं मित्र सबके।
मैं भी बनूं प्रभुजी, वैसी विधि जतादो ॥ २ ॥
मोहादि शत्रु सारे, घेरे खड़े हैं मुझको।
कैसे इन्हें हटाऊँ, हे नाथ! मुझे बतादो ॥ ३ ॥
अज्ञान तम है छाया, दिखता न मार्ग मुझको।
अध्यात्म ज्ञान ज्योति, मानस में अब जगादो ॥ ४ ॥
आतम स्वतन्त्रता का, उत्कट चरित्रता का।
लेना है दान विभुवर! अब शीघ्र ही दिलादो ॥ ५ ॥
स्वात्मानुभूति देना, यह प्रार्थना सुन लेना।
सन्तोष शान्ति जिनवर! मुझको भी अब सिखादो ॥ ६ ॥
लाखों को तुमने तारे, भव सिन्धु से उबारे।
नैया यह तट पै द्रुततर, मेरी भी अब लगादो ॥ ७ ॥
मुझको अगर न तारो, फिर आप ही विचारो।
है अन्य कौन सुखकर, जाऊँ कहाँ बतादो ॥ ८ ॥
मैं हूँ अधम अपावन, तुम हो पतित पावन।
कर्मों का बन्ध दृढ़तर, हे नाथ! अब छुड़ा दो ॥ ९ ॥
आये शरण तुम्हारी, बनकर तेरे पुजारी।
कर सिर पै रख प्रभुजी, निर्भय हमें बना दो ॥ १० ॥
आनन्दमय सुअवसर, पाया सज्ज्ञान दिनकर।
'उपयोग' दो कृपाकर, 'सज्जन' को झट जगादो ॥ ११ ॥



३. संभव जिन स्तवन

[राग भैरवी, तर्ज—मुबारक हो मुबारक हो ....]
(तर्ज—बिना प्रभु पार्श्व के देखे....)

प्रभो! दर्शन की हूँ प्यासी, पिलादो नाथ! करुणा कर।
शुद्ध वह रूप अविनाशी, दिखादो नाथ! करुणा कर ॥ स्थायी

चतुर्गति में जगत्त्राता, मुझे है कर्म भटकाता।
सहा दुःख यह नहीं जाता, मिटादो नाथ! करुणा कर ॥१॥

कभी है क्रोध अहि डँसता, कभी मद अष्ट में फँसता।
कभी माया के वश पड़ता, बचादो नाथ! करुणा कर ॥ २ ॥

कभी हास्यादि षट् शत्रु, पकड़ते आन मुझ जत्रु।
वेद त्रय पाश में जकड़ा, छुड़ादो नाथ! करुणा कर ॥ ३ ॥

ज्ञानमय रूप को भूला, विषय झूले में मैं झूला।
क्षणिक सुख प्राप्त कर फूला, जगादो नाथ! करुणा कर ॥ ४ ॥

पुण्य से प्राप्त यह नर भव, शान्त हो जाय अब भव-दव।
मिले अति शीघ्र स्व-वैभव, दिलादो नाथ! करुणा कर ॥५॥

शुद्ध सम्यक्त्व धारिणी बन, करूं रत्नत्रयाराधन।
आत्महित के सभी साधन, दिलादो नाथ! करुणा कर ॥६॥

गहूँ चारित्र अति उत्तम, लखूं मैं रूप निज अनुपम।
मेरे मन से अब मोह का तम, हटादो नाथ! करुणा कर ॥७॥

करूँ विनती यही भगवन्! काटदो कर्म के बन्धन।
चरण में कोटि अभिवन्दन, स्वीकारो नाथ! करुणा कर ॥८॥

असम्भव हो सभी सम्भव, तुम्हारे ध्यान से सम्भव!
विमल आनन्द का अनुभव, करादो नाथ! करुणा कर ॥९॥

स्वर्ण सम वर्ण अति सुखकर! ज्ञान उपयोग मय सुन्दर।
दासी सज्जन को हे जिनवर! दिखादो नाथ करुणा कर ॥१०॥

—:—

६. पद्मप्रभ जिन स्तवन

(राग मारवाड़ी—आया तमाखू ऊँट....)
(तर्ज—थाँरी छोटी सी उमरिया)

प्रभुजी म्हारा पद्मप्रभ जिनराज, चरण करूँ वन्दना महाराज।
प्रभुजी मारा तुम त्रिभुवन शिरताज, सदन आनंद नां महाराज ॥स्थाई॥

प्रभुजी म्हारा, तुम देवाधिदेव, वासी अपवर्गनां महाराज,
तव पद पंकज सेव करे, सुर स्वर्गनां महाराज ॥१॥

प्रभुजी म्हारा, भविजन धरे तव ध्यान, आत्म अनुभव करे महाराज,
प्रभुजी म्हारा बेशी चारित्रयान, संसार सागर तरे महाराज ॥२॥

प्रभुजी म्हारा, ताहरूं शुद्ध स्वरूप, कारण छे सिद्धि नु महाराज,
ध्याता देखी निज रूप, भोक्ता हो स्व ऋद्धि नु महाराज ॥३॥

प्रभुजी म्हारा, हूँ पुद्गल संयोग, विसरी तुझ भक्ति ने महाराज,
उपदिशो एहवो प्रयोग, संभारू निज शक्ति ने महाराज ॥४॥

प्रभुजी म्हारा, शरणागत प्रतिपाल, दासी तुम पद तणी महाराज,
अष्ट कर्म जंजाल, थी काढो मुझ भणी महाराज ॥५॥

प्रभुजी म्हारा, बाध्यो दुःख सन्ताप, मली दुर्जन सहु महाराज,
तव आणा उत्थाप, हूँ दुःख पामी बहु महाराज ॥६॥

प्रभुजी म्हारा, हवे मुझ पर दया लाय आराधक बनावजो महाराज,
शान्ति सुधा वर्षाय, ताप त्रय शमावजो महाराज ॥७॥

प्रभुजी म्हारा, आत्म भूमि नूं करूं शोध, बोध एक आपजो महाराज,
आश्रव नो करी रोध, कर्म सहु कापजो महाराज ॥८॥

प्रभुजी म्हारा, रक्तवर्ण जगनाथ, तव पद अनुरक्त छूँ महाराज,
मुझ मस्तक धरो हाथ, तमारी भक्त छूँ महाराज ॥९॥

प्रभुजी म्हारा, अनुपम आनन्द आज, कल्पतरु गृह फल्यो महाराज,
शिवपद लेवा काज आज दर्शन मल्यो महाराज ॥१०॥

प्रभुजी म्हारा, अन्तर् ज्ञान प्रकाश, थी जीवन कृत्कृत्य थयो महाराज,
उपयोग आपी पूरो आश 'सज्जन' कहे जिनजयो महाराज ॥११॥



७. सुपार्श्व जिन स्तवन

[तर्ज—तेरे पूजन को भगवान्....]

पुण्योदय से मैंने आज भेंटे श्री सुपार्श्व जिनराज ॥ स्थायी ॥

पिता प्रतिष्ठ के पुत्र हैं प्यारे, माँ पृथ्वी के राजदुलारे,
जगज्जन तारण तरण जहाज....भेंटे.... ॥१॥

तव जन्म से धन्य है अवनी, जैसे चन्द्रोदय से रजनी।
शोभित तुमसे जीव समाज....भेंटे....॥२॥

सूरत मूरत मोहनगारी, श्री सुपार्श्व जिनराज तुम्हारी।
तुम हो त्रिभुवन के शिरताज....भेंटे....॥३॥

अगम अपार तुम्हारी महिमा, अलख अचिन्त्य है सारी गरिमा।
कह कह थाके सुरनरराज....भेंटे....॥४॥

मैं हूँ अधमा अति दुखियारी, चरण शरण गही नाथ ! तुम्हारी।
रखलो अब प्रभु मेरी लाज....भेंटे....॥५॥

कर्मराज ने मुझको पटका, भव वन में मैं खूब ही भटका।
बचालो मुझको प्रभुवर ! आज....भेंटे....॥६॥

तव आज्ञा को शिर पर धारूँ, कर्मों का गुरुभार उतारूं।
मेरी सुध लो गरीब निवाज....भेंटे....॥७॥

कर्म चेतना में भरमाया ज्ञान चेतना से सुख पाया।
बाजे विजयदुन्दुभि आज....भेंटे.... ॥८॥

४. अभिनन्दन जिन स्तवन

[तर्ज—दिल लूटने वाले जादूगर.......]

अभिनन्दन जिनराज तमारूं, दर्शन मुझ मन वसियुं।
दर्शन दर्शन रटतुं फरे छे, मन दर्शन नुं रसियुं रे ।। स्थायी ।।

संवर नन्दनवननां चन्दन, सिद्धार्था ना जाया रे।
गर्भस्थित अभिनन्दन कीनो, सुरपति शीश नवाया रे ।।१।।

दर्शन काजे साज सजूं वहु, तदपि न दर्शन पामूं रे।
हूँ परभावमां रमण करूं छूं, तुझ दर्शन किम पामूं रे ।।२।।

मन खांचूं जो परपरिणति थी, तो ते वलि वलि जाये रे।
जो नवि रोकुं तो छूटो फरे छे, ते कहो किम वश थाये रे ।।३।।

काल अनादि थी जेहनो परिचय, पुद्गल थी छे स्वामी रे।
एने एह ज प्रिय भासे छे, नथी अन्य नो कामी रे ।।४।।

यद्यपि पुद्गल संग थी एह ने रखड़वुं पड़े भव वनमां रे।
तो पिण धृष्टथई साथ न त्यजतुं, भय नहीं आणे मनमां रे ।।५।।

वार वार समझाऊं एहने, एक वात नहीं माने रे।
कृत्य अकृत्य न शोचतुं मूरख, करतुं छाने छाने रे ।।६।।

आवा अज्ञानी ने किम वारूं हूँ, ते युक्ति समझावो रे।
तमने त्यजी कोनी शरण हूं जाऊँ, तमे समरथ कहेवावो रे ।।७।।

तारी अनुपम मुद्रा जोई, मुझ मन हर्षित थाये रे।
निशदिन दर्शन चाहे तमारूं, वीजे क्या नवि जाये रे ।।८।।

सुख सागर भगवान त्रैलोक्य मां, आनंद रस वरसाओ रे।
मोह-तिमिर हरी मनमंदिर मां, ज्ञाननी ज्योति जगाओ रे ।।९।।

शुभ उपयोग मां प्रतिक्षण वरतुं, जीवन सफल वनाऊँ रे।
'सज्जन' मननी ए अभिलापा, शिव सुख भोगी वनजाऊँ रे ।।१०।।



५. सुमति-जिन स्तवन

(राग माँढ, नाकोडा स्वामी.......)

सुमति जिन स्वामी, शिवसुखधामी
सुमति दो सुखकार ।। स्थायी ।।
नगर अयोध्या में प्रभु जन्मे, मेघ नृपति के गेह,
सुमति प्रसृत सकल देश में, अवतरे अर्हन् सदेह रे ।।१।।
सुमङ्गला-नंदन पाप निकन्दन, सुमति दो सुमति दातार,
दुर्मति भञ्जन सन्मति-सर्जन, सुमति करण संसार रे ।।२।।
कुमति संग से बहु दुःख पाया, भ्रमण किया गति चार,
अब दो नाथ दया कर मुझको, सुमति सदा हितकार रे ।।३।।
कुमति कुलटा कुटिल कुनारी, साथ से सब सुविचार,
तप जप ध्यान नियम व्रत खोकर, बना दरिद्र सरदार रे ।।४।।
सुमति बिन नहीं भावना आवे, नहीं होवे मन अविकार,
नाथ ! कहो फिर कैसे पाऊँ, सुख सम्पति श्रीकार रे ।।५।।
कुमति कु-सखी निशदिन मुझको, देती दुःख अपार,
नरक निगोद में जाके पटके, जहाँ दुःख का नहीं पार रे ।।६।।
सुमतिनाथ ! सुमति दो हमको, जिससे जाने स्वरूप,
पर परिणति हटाकर स्व के बन जाये गुण भूप रे ।।७।।
सुमति संग से संयम रति हो, हो सन्मति का विकास,
सन्मति से सद्गति हो जाये, दुर्गति का हो विनाश रे ।।८।।
विषय कषाय से विरति होवे, संयम रति हो देव !
सन्मति से दुर्मति कुलटा का, त्याग होवे स्वयमेव रे ।।९।।
कर्म चेतना परिवर्तित हो, सत्कर्म हो निष्काम,
सतत जागृत रहे ज्ञान चेतना, पाऊँ पद विश्राम रे ।।१०।।
सुख सागर भगवान् त्रैलोक्यपति, आप हैं आनन्दकार !
ज्ञानोपयोग की सज्जन मन में करदो ज्योति प्रसार रे ।।११।।



आत्मज्ञान बिन जग में अंधेरा, ज्ञान ज्योति का करो उजेरा,
जिससे सुधरे सारे काज.... भेंटे.... ॥९॥
वीतराग तव ध्यान से होता, नहीं खाता भवोदधि में गोता ।
भविजन पाता स्व-साम्राज्य.... भेंटे.... ॥१०॥
शुद्ध निर्मलानन्द दिलादो, ज्ञानोपयोग पीयूष पिलादो ।
सज्जन माँगे प्रभु जिनराज.... भेंटे.... ॥११॥

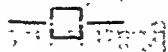


८...चन्द्रप्रभ जिन स्तवन

[राग धन्याश्री—सखिरी ! मोरी आज की....]

सूरत पर वारी जाऊँ जिनचन्द....॥टेर॥

चन्द्रप्रभ जिन जन मन रञ्जन, महसेन नृप नंद । सूरत....॥१॥
समवसरण बिच आप विराजत, ज्यों तारा बिच चन्द । सूरत....॥२॥
श्वेत स्निग्ध तव वदन प्रभा लख, ले भवि चकोर आनंद । सूरत....॥३॥
आभा-मण्डल मध्य तव आनन, जैसे दीप्त दिनन्द । सूरत....॥४॥
अष्ट महा प्रातिहार्य की शोभा, देखत होय आनन्द । सूरत....॥५॥
सुधासिक्त गम्भीर गिरा सुन, दूर करे मोहमन्द । सूरत....॥६॥
देश सर्वविरतधर भविजन, काटत कर्म के फन्द । सूरत....॥७॥
एक कोटि नित सेवा करते, आपकी निर्जर वृन्द । सूरत....॥८॥
अम्बर शहर में आप विराजे, दर्शन है सुख कन्द । सूरत....॥९॥
आनन्दमय शुभ अवसर है यह, उदय हो ज्ञान अमन्द । सूरत....॥१०॥
शुभ उपयोग में रमण करूँ नित, सज्जन माँगे जिनंद । सूरत....॥११॥



९. सुविधि जिन स्तवन

[तर्ज—सुना है तारे हैं तुमने लाखों]

प्रभो ! तुम्हारी छवि है प्यारी,
हमारे दिल को लुभा रही है।
आंगी तुम्हारी अति मनोहारी,
बिखेर अपनी प्रभा रही है ॥ स्थायी ॥

सुग्रीव कुल के हो तुम दिनकर,
श्वेत वर्ण मय देह मनोहर।
स्नात्र महोत्सव करते सुखकर,
देव देवियाँ हर्षा रही हैं, प्रभो···॥१॥

शैशव में चंचलता नहीं थी,
यौवन की मादकता नहीं थी।
वैभव में आसक्ति नहीं थी,
यह उत्तमवृत्ति सिखा रही है, प्रभो···॥२॥

मस्तक मुकुट है परम मनोहर,
गलहार भुजबन्द अत्यन्त सुन्दर।
शान्त मूरत तुम्हारी जिनवर,
आँखों से अमृत वर्षा रही है, प्रभो···॥३॥

सब दुःखहारी, प्रमोदकारी,
यह दिव्य प्रतिमा प्रभो ! तुम्हारी।
एक बार भी जिसने निहारी,
उन्हीं नयनों में समा रही है, प्रभो···॥४॥

कायोत्सर्ग मुद्रा नासाग्र दृष्टि,
करती है शान्ति सुधा की वृष्टि।

जीवन में रचती नवीन सृष्टि,
अज्ञान सारा भगा रही है, प्रभो····॥५॥
श्रेष्ठ मानव चरित्रता का,
जीवन की वर पवित्रता का।
कर्मफल की विचित्रता का,
पाठ अनुपम पढ़ा रही है, प्रभो····॥६॥
जब जग में भौतिकता है छायी,
तब आध्यात्मिक ज्योति जगाई।
मोहान्धता है सबकी मिटाई,
हम सबकी भी मिटा रही है, प्रभो····॥७॥
मोह रिपु को हटाने वाला,
स्वरूप को प्रकटाने वाला।
भव भ्रमण को मिटाने वाला,
यह ज्ञान हमको सिखा रही है, प्रभो····॥८॥
आत्मशुद्धि की विधि सिखलायी,
पथ भूलों को राह दिखाई।
भेद ज्ञान की कुंजी बताई,
अब भी हमको बता रही है, प्रभो....॥९॥
द्रव्य भाव से पूजा जो करते,
पाप ताप सन्ताप को हरते।
भविजन वाञ्छित सुख को वरते,
सिद्धि सत्पथ दिखा रही है, प्रभो····॥१०॥
श्री सुविधि जिन तुम्हारा दर्शन,
करता आध्यात्मिक आनन्द वर्द्धन।
ज्ञानोपयोग में रहे सज्जन मन,
हृदय की विनती सुना रही है, प्रभो····॥११॥



१०. शीतल जिन स्तवन

(राग सोरठ—पंथडो निहालूं रे····)

किम गुण गाऊँ रे, शीतल जिन तणा रे, महिमा जेहनी अनन्त ।
कही कही थाक्या रे, गणधर सुरवरा रे,
पण नहीं पाम्या अन्त ।। स्थायी ।।

जेहना तेजने रे असंख्य सूर्य शशधर मली रे, प्राप्त कदापि न थाय ।
तो पिण शीतल रे जे छे एहवो रे, भविना ताप शमाय, किम···· ।।१।।

मधुर सुधा सम जेहनी वाणी छे रे, भविजन करता पान ।
मोह विष हरती रे भरती अनुपम शांति ने रे, करती प्रकट शुभ ज्ञान।।२।।

शीतल जिन नो रे नाम सदा जपो रे, जो चाहो शिव सुख ।
एहना जाप थी रे ताप सवि टले रे, मिट जाये भव दुःख, किम····।।३।।

ज्ञान अनन्तो रे ज्ञेय तणी परे रे, जाणे त्रैकालिक भाव ।
तुलना नहीं थाये जगमां कोई थी रे, एहवो अगम स्वभाव, किम····।।४।।

दर्शन गुणनी रे तेम अनन्तता रे, कोई थी न कहेवाय ।
सुर गुरु पिण ते नहीं सके कही रे, रसना कोटि निर्माय, किम····।।५।।

आत्मरमणता रे भोग स्वरूपनो रे, ते आनन्द अमाप ।
अनुभव करे रे ते जाणे सही रे, बीजा करे रे प्रलाप, किम····।।६।।

शक्ति अपरिमित प्रभुवर ! आपनी रे, प्रभुता लोपे न कोय ।
सकल द्रव्य तव आज्ञा शिर धरे रे, अदभुत रीति जोय, किम····।।७।।

तुझ आलम्बने स्वरूप मुझ भाससे रे, ए आशा मन धार ।
हवे तव चरण शरण हूं आदर्यो रे, तार प्रभो ! मुझ तार, किम····।।८।।

समर्थ नर नो चरण शरण अवलम्बता रे, निर्भय सहु को थाय।
आप सदृश कोई अन्य समर्थ नथी रे पूरव पुण्ये कोई पाय, किम····॥९॥
आनन्ददायक योग अपूर्व मल्यो रे, सफल करू अवतार।
दर्शन ज्ञान चरण नी साधना रे, 'सज्जन' करशे भव पार, किम····॥१०॥



११. श्रेयांस जिन स्तवन

[तर्ज—तावड़ो धीमो पड़जा रे]

मूरति मोहनगारी है, दर्शन से दुःख जाय
ध्याय होवे भवपारी है ॥स्थायी॥
विष्णु नृप नन्दन सदा रे, वन्दो निर्मल भाव, प्रभुजी····
प्रकट करो निज शक्ति को रे, त्यागो सभी विभाव····
दाव यह मिल गया भारी है, दर्शन ॥१॥
प्रभु दर्शन पीयूष से रे, नष्ट विषय विष दोष, प्रभुजी····
रुग्ण आत्म ले स्वस्थता रे, रत्नत्रय का पोष····
शोष कर्मों का भारी है, दर्शन····॥२॥
प्रभु दर्शन चिन्तामणि रे, चिन्ता देता चूर, प्रभुजी····
ऋद्धि सिद्धि समृद्धि हों रे, वजे सुयश के तूर····
नमें सुर नर अधिकारी है, दर्शन····॥३॥
प्रभु दर्शन है काम घट रे, पूरे इच्छित सर्व, प्रभुजी····
देख जिसे मिट जाय द्रुत रे, सुरपति का भी गर्व····
महिमा अपरम्पारी है, दर्शन····॥४॥
प्रभु दर्शन है कल्पतरु रे, कामित फल दातार, प्रभुजी····
जिसकी छाया सुखद है रे, भव-भव दुःख हर सार····
सुखी बनते नर-नारी हैं, दर्शन····॥५॥

प्रभू दर्शन अद्भुत पवि रे, दुरित कर्म ध्वंसकार, प्रभुजी....
सदाश्रेय हो भक्त का रे, खोले मुक्ति के द्वार...
बन्द संसार की वारी है, दर्शन....॥६॥

प्रभु दर्शन है अपूर्व रवि रे, करता ज्ञानालोक, प्रभुजी....
ज्ञानालोक के उदय से रे, हर्षित हो भव्य कोक....
शोक सब दूर निवारी है, दर्शन....॥७॥

श्रेयस् करते जगत का रे, हरते पाप विकार, प्रभुजी....
भरते रत्नत्रय राशि से रे, भवि के हृदय भण्डार....
सार सुख के दातारी है, दर्शन....॥८॥

प्रभु दर्शन पाये विना रे, आवे नहीं भव अन्त, प्रभुजी....
भविजन दर्शन कर सदा रे, पाते भवजल अन्त....
सन्त जन कहते पुकारी हैं, दर्शन....॥९॥

श्री जिनवर दर्शन मिला रे, खिला हृदयमय फूल प्रभुजी....
आनन्द भृत इस सुगन्ध से रे, मिटी अनादि की भूल....
मूल समकित सुखकारी है, दर्शन....॥१०॥

प्रभु दर्शन शारद शशि रे, शीतल ज्योत्स्ना धाम, प्रभुजी....
पाप ताप सन्ताप का रे, जहाँ न किञ्चित काम....
राम आराम अपारी है, दर्शन....॥११॥

ज्ञान भानु के उदय से रे, हटा मोहतम आज, प्रभुजी....
शुभ उपयोग प्रसाद से रे, 'सज्जन' मिला स्वराज....
काज सब दिये सुधारी है, दर्शन....॥१२॥



१२. वासुपूज्य जिन स्तवन

[राग आशावरी, तर्ज—उवसग्ग हरं····]

वन्दूँ वासुपूज्य जयकारी, अविकारी सुखकारी रे, वन्दूँ ।।स्थायी।।

चम्पापुरी के नृप वसुपूज्य की, महाराज्ञी जया नारी ।
रत्नकुक्षी से राजहंस सम, स्वर्ग से आये अवतारी, वन्दूं····।।१।।

रोहिणी नक्षत्र में जन्मे प्रभुजी, आवे छप्पन कुमारी ।
करे प्रसूति कर्म भक्ति भर, हर्ष हृदय में अपारी, वन्दूं····।।२।।

आवे सौधर्मेन्द्र तदनन्तर, पंच रूप ले धारी ।
एक ग्रहे कर सम्पुट प्रभु को, द्वितीय छत्रधारी, वन्दूं····।।३।।

चामर वींजे दोय रूप से, एक वज्र से विघ्न निवारी ।
मेरु गिरी ले जावे प्रभु को, जय जय शब्द उच्चारी, वन्दूं····।।४।।

आवे चौंसठ इन्द्र सर्व मिल, सुरसुरी सब परिवारी ।
जन्म महोत्सव जिनजी का करने, तीर्थों से लावे वारी, वन्दूं····।।५।।

स्वर्णादि अष्ट जाति कलश भर, देव-देवी आज्ञाकारी ।
सौधर्मेन्द्र के अंक विराजित, अरुण वर्ण मनोहारी, वन्दूं····।।६।।

त्रेसठ इन्द्र मिल स्नात्र करत हैं, नृत्य करे शची सारी ।
द्वादश तूर्य बजावें सुरवर, अगजग मंगलकारी, वन्दूं····।।७।।
ईशानेन्द्र से कहे सौधर्मपति, बन्धु अब मेरी वारी ।
तुम ग्रहो अब प्रभु को अंक में, स्नपन कराऊँ सुखकारी, वन्दूं····।।८।।
वृषभ रूप धरि, शृंगे जल भरी, न्हवरावे भक्तिभारी ।
अष्ट मंगल-रचे, भक्तिभाव करे, पूजन अष्ट प्रकारी रे, वन्दूं····।।९।।
माता निकट फिर लावे प्रभु को, प्रणत भाव मनधारी ।
धन्य-धन्य मानत निज भव को, करे स्मरण वारम्बारी, वन्दूं····।।१०।।

ले दीक्षा प्रभु केवल पाये, तीर्थ स्थापे चारी।
दे प्रतिबोध भव्य जीवों को, किये मुक्ति अधिकारी, वन्दूं····॥११॥
देश देश में विचरण करके, ज्ञान ज्योति विस्तारी।
चम्पापुरी निर्वाण प्रभु का, तीर्थ धाम बलिहारी, वन्दूं····॥१२॥
ऐसे पुण्य पुरुष तीर्थङ्कर, वासुपूज्य शिवकारी।
पूजा सेवा करते 'सज्जन', पाते सुख नरनारी, वन्दूं····॥१३॥



१३. विमल जिन स्तवन

[कड़खा की राग—विभास]

अहो श्री विमल जिन, विमलता तुम तणी,
अद्भुत अलौकिक अछे स्वामी।
वर्णवी केम शकूं क्षुद्रमति माहरी,
गणधर शक्या नहीं पार पामी ॥अहो····॥ १ ॥
ज्ञानावरण नां सर्वथा विगम थी,
विमल जो केवलज्ञान पायो।
सर्व द्रव्यों तणी त्रैकालिकी वर्तना,
प्रकट भाषित इम शास्त्र गायो ॥अहो····॥ २ ॥
दर्शनावरण नां क्षय थकी जे थयुं,
केवलदर्शन सवदर्शी।
अन्य द्रव्याधिगत विविध विचित्रता,
तमने प्रभु ते कदापि न स्पर्शी ॥अहो····॥ ३ ॥
मोहनां पूर्णतः नाश थी जे थयी,
रमणता स्व-गुण पर्याय मांही।
विमल चारित्रनी पूर्णता जे कही,
न मले जगतमां अन्य क्याहीं ॥अहो····॥ ४ ॥

संक्षय थयुं अन्तराय नूं सर्वथा,
प्रकट थयी शक्ति त्यारे अपारी।
दान ने लाभ भोगोपभोगादि सहु,
स्वगुणनां थाय ए रीति न्यारी ॥अहो""॥ ५ ॥
एम अनन्तता चार नी जे मली,
प्रभुनी अमेय प्रभुता प्रकाशे।
जगतनां द्रव्य सहु आण शिर धारतां,
तेहने कोई पण नवि विनाशे ॥अहो""॥ ६ ॥
विमल जे रूप प्रभु शुद्ध आतमा तणो,
ते तमे प्राप्त कर्युं कर्म कापी।
त्रिभुवन तिलक ! हूँ चरण रज आपनी,
मने पण नाथ द्यो तेह आपी ॥अहो""॥ ७ ॥
मलिन थई कर्म मल थी मुझ आतमा,
विमलजिन विमल करो एने आजे।
काज ए मुझ करी विरुद निज राखजो,
जगत तुझ यश तणो पडह वाजे ॥अहो""॥ ८ ॥
पंच मिथ्यात्व कषाय पंचविंशति,
बारह अव्रत पंच प्रमाद योगे।
जीवने कर्म मलि मलिनता सर्जता,
तेहथी आतमा दुःख भोगे ॥अहो""॥ ९ ॥
प्रभो ! अनुग्रह करी सुमति द्यो सुखकरी,
जेम ये आत्मस्वरूप बोधे।
बोध निज रूप नो थाय तो शीघ्र ही,
रोध करी कर्म नो आत्मशोधे ॥अहो""॥ १० ॥
भावना हृदय नी एह आनन्दघन !
ध्यान धरूं विमल जिन ! एक त्हारूं।
'ज्ञान उपयोग' थी आत्म अनुभव करी,
करे 'सज्जन' सदा गुणगान त्हारूं ॥अहो""॥ ११ ॥



१४. अनन्त जिन स्तवन

[तर्ज—शुद्ध सुन्दर अति मनोहर....]

अनन्त जिनवर ! आप तो अनन्त गुण भण्डार हैं।
अनन्त दर्शन-ज्ञान-चारित्र बल के प्रभु आगार हैं ॥ स्थायी ॥
अनन्त गुण पर्याय के ज्ञाता हे प्रभुवर आप हैं,
अन्य देव न और जग में, ऐसे ज्ञानागार हैं। अनन्त....॥ १ ॥
चतुः षष्टी इन्द्र मिल पूजा रचाते आपकी,
पूजातिशय अद्भुत अलौकिक सदा मंगलकार हैं। अनन्त....॥ २ ॥
मञ्जुल मधुर मृदु-तत्वमयी वाणी गरजती मेघ-सी,
मालकोश सुराग में करते श्रवण नर-नार हैं। अनन्त....॥ ३ ॥
विचरते जिस देश में वहाँ ईति भीति न व्यापती,
सर्वत्र सुख शांति समृद्धि, अतिशय अनन्त अपार हैं। अनन्त....॥ ४ ॥
जातीय वैर भी भूलकर, पशु-पक्षी गण मिल बैठते,
है अपूर्व प्रभाव ऐसा, जहाँ दया साकार है। अनन्त....॥ ५ ॥
उसी में से अंश किञ्चिद् मांगती हूँ आज मैं,
दीजिए मुझको वही प्रभु आप सुख दातार हैं। अनन्त....॥ ६ ॥
आत्मबल से हीन हूँ मैं लीन हूँ परभाव में,
शक्ति दो स्वाभाविकी बस उससे ही उद्धार है। अनन्त....॥ ७ ॥
मोहतम से ढँकी रही, आतम निधि मेरी प्रभो !
ज्योति जगे जब ज्ञान की, तब आत्म साक्षात्कार है। अनन्त....॥ ८ ॥
आनन्ददायक ज्ञान ऐसा, रहे प्रकट घट में सदा,
आत्मबल से शीघ्र ही फिर कर्म दल संहार है। अनन्त....॥ ९ ॥
सुख सिन्धु हो ! भगवान् हो ! त्रैलोक्य के प्रभु नाथ हो,
पुण्यमय पावन चरण को नमन बारम्बार है। अनन्त....॥ १० ॥
देव शुभ उपयोग में ही चित्त वृत्ति लीन हो,
स्वीकृत करें 'सज्जन' विनय प्रभु आप तारणहार हैं। अनन्त....॥ ११ ॥



१५. धर्मनाथ जिन स्तवन

[राग—काफी—ऐसे श्याम सलोने खेलत नेमिकुमार]

वन्दूं, धर्म जिनेश्वर, भाव धर्म दातार.................॥ स्थायी ॥

भानु नृपति कुल गगनाङ्गण के अद्भुत भानु उदार,
सदा उदित रहते हैं निशदिन, करते तेज प्रसार। वन्दूं....॥ १ ॥
सुव्रता जननी रत्नकुक्षि में, प्रभुवर लिया अवतार,
जन्म समय प्रकाश त्रिभुवने, सुखमय हुआ संसार। वन्दूं....॥ २ ॥
धर्म नाम सार्थक किया प्रभु ने, करके धर्म प्रचार,
आतमधर्म रत्नत्रय रूपे, समझाया स्वयंधार। वन्दूं....॥ ३ ॥
दशविध धर्म कहा स्थानाङ्गे सुनकर किया सुविचार,
लौकिक लोकोत्तर धर्मद्वय, स्वस्थाने श्रीकार। वन्दूं....॥ ४ ॥
कर्तव्यवाची लौकिक धर्म, नैतिक जग व्यवहार,
नैतिकता ही धर्म की जननी, धर्म से सब सुखसार। वन्दूं....॥ ५ ॥
धर्म द्विरूपे प्रचलित जग में, उपासना आचार,
प्रथम धर्म आचार शास्त्र में, द्वितीय भक्ति उरधार। वन्दूं....॥ ६ ॥
जीवन परिवर्तित चर्या से, यम ही मूलाधार,
यम पश्चात् है स्थान नियम का, जप तप भक्ति प्रचार। वन्दूं....॥ ७ ॥
जीव है नित्य कर्म का कर्त्ता, भोक्ता जीव विचार,
मोक्ष है मोक्ष का मार्ग भी है, यही आस्तिकता आधार। वन्दूं....॥ ८ ॥
मृत्तिका स्वर्ण तैल तिलवत् ज्यों, जीव कर्म एकाकार,
पृथक्करण हो अग्नियन्त्र से, तप संयम उपचार। वन्दूं....॥ ९ ॥
कर्म मुक्त आत्मा भी ज्यों ही, हो जाता अविकार,
जिसके आराधन से जग में, तरे भव्य नरनार। वन्दूं....॥ १० ॥
दे दो मुझको सम्यग् श्रद्धा, सम्यक् ज्ञानाचार,
"सज्जन" अष्ट कर्म से मुक्ति प्राप्त करे जयकार। वन्दूं....॥ ११ ॥



१६. शान्तिनाथ जिन स्तवन

[तर्ज—हे हृदयेश हितंकर गुरुवर !]

श्री शान्तिनाथ भगवान हमें सुख शान्ति मार्ग दिखलादो,
प्रभु विधि समझादो ॥ स्थायी ॥

काल अनादि से भव वन में, भटक रहे अंधकार गहन में,
ज्ञान की ज्योति जगादो तम तिमिर हटादो । श्री.....॥ १ ॥

भव वन है यह महा भयंकर, पद-पद पर हैं कांटे कंकर,
इनको दूर हटादो, बाधाएँ मिटादो । श्री.....॥ २ ॥

क्रोध के अजगर बैठे मग में, मान मतंगज खड़े पग-पग में,
कैसे बढ़ू बतादो, प्रभु ! राह दिखादो । श्री.....॥ ३ ॥

माया डाकिन मुझे डराती, खाऊंगी कह आंख दिखाती,
शक्ति मेरी बढ़ादो, कायरता भगादो । श्री.....॥ ४ ॥

लोभ दस्यु दल खड़ा है आगे, भागें तो हम कैसे भागें,
प्राण हमारे बचादो, हमें अभय बनादो । श्री.....॥ ५ ॥

मोह सिंह चीते गुर्राते, दहाड़ों से दिल को दहलाते,
मिथ्या ज्ञान हटादो, सम्यक्त्व जगादो । श्री.....॥ ६ ॥

चंचल मन वनमानुष जैसे, चिल्लाते हैं भूतों जैसे,
इनको पथ से हटादो, निर्विघ्न बनादो । श्री.....॥ ७ ॥

भोग दावानल धधक रहा है, इसका भी तो ताप महा है,
इसको शीघ्र बुझादो, आतम सरसा दो । श्री.....॥ ८ ॥

आत्मज्ञान पीयूष की धारा, बरसे तो दव शान्त हो सारा,
भगवन् ! झट बरसादो, मुझ मन हर्षादो । श्री.....॥९॥

भवारण्य से पार हो जाऊं, मुक्ति महल में जा बस जाऊं,
सिद्धि सोपान चढ़ादो, दुविधाएं मिटादो । श्री.....॥१० ॥

'सज्जन' मन में ज्ञान उजाला, हो जाये ज्यों मंगल माला,
विजय ध्वजा फहरादो, मुक्ति पहुंचादो । श्री.....॥ ११ ॥



१७. कुन्थु जिन स्तवन

[ना छेड़ो दूंगी गाली रे। प्रभुजी आयो थारे द्वार.......]

प्रभु कुन्थु जिनेश्वर सुनिये जी अब मेरी यह अरदास।
मुझे आत्मधर्म अब दीजेजी, कर्मों का करूं विनाश ॥ स्थायी ॥
'सुर' नृपति के कुलतारे 'श्री' माता के राजदुलारे,
प्रभु आत्मधर्म को धारे जी, वारे कर्मों का त्रास.....॥ १ ॥
ज्ञानावरणी ये लुटेरा, नित लूटे ज्ञान धन मेरा,
होने नहीं देता सवेरा जी करता रहता उपहास.....॥ २ ॥
दर्शनावरणी जब आता, निद्रा पंचक फैलाता,
निज रूप का नाम भुलाता जी, कैसे हो उसका नाश.....॥ ३ ॥
है वेदनी दोय प्रकारा, मधु लिप्त खड्ग की धारा,
आस्वादन रसना विदाराजी, देता है अधिक संत्रास.....॥ ४ ॥
दर्शनमोहनी जब जावे, तब आतमरूप लख पावे,
परमोत्तम भावना भावेजी, हो जावे दृढ़ विश्वास.....॥ ५ ॥
चारित्रमोह संक्षय से, कर्मों पर पूर्ण विजय से,
हो जीव मुक्त भव भय से जी, तोड़े कर्मों के पाश.....॥ ६ ॥
इस आयु कर्म की कारा, में बन्दी आत्म बेचारा,
बिन भोगे नहीं छुटकारा जी, होता है अति निराश.....॥ ७ ॥
शुभ नाम गोत्र प्रभावे, दशविध दुर्लभ तन पावे,
अन्तराय क्षयोपशम भावे जी, कर पावे स्वगुण विकास.....॥ ८ ॥
मुझे भावधर्म अब दीजे, इतनी सी करुणा कीजे,
विनती यह स्वीकृत कीजे जी, मिल जाये ज्यों आश्वास.....॥ ९ ॥
कुन्थु जिन नाम तुम्हारा, जपते हो भव निस्तारा,
करदो हे नाथ हमारा जी, शुद्धात्म धर्म सुविकास.....॥ १० ॥
जब ज्ञान चेतना जागे, आतम में आतम लागे,
'सज्जन' बस इतना मांगे जी, चरणों में हो संवास.....॥ ११ ॥



१८. अरनाथ जिन स्तवन

[तर्ज—दिल न दुखाना..........]

शिव सुखकारी शरण तिहारी, मैं आई प्रभुजी तारिये,
दुःख वारिये जाऊं बलिहारी .... शिव....।। स्थायी ।।

माँ देवी उर मानसरोवर, आप राजमराल हैं।
सुदर्शन नृप महा उपवन के मधुर सु-रसाल हैं।
स्वर्ण देहधारी .... शरण....।। १ ।।

आप ही भरताधिपति थे, चक्रधारी सातवें।
वर धर्मचातुरन्त चक्री आप ही अट्ठारहवें।
धर्म प्रचारी .... शरण ....।। २ ।।

अरनाथ जिनवर आज मेरी अरज यह सुन लीजिये।
भव सिन्धु बिच में भटकती ये, पार नैया कीजिये।
जग जन तारी.... शरण....।। ३ ।।

अज्ञानतम छाया है गहरा, ज्ञान का न प्रकाश है।
दिखे कैसे मार्ग हमको, हो रहे निराश हैं।
झंझा है भारी.... शरण....।। ४ ।।

लगते तरङ्गों के थपेड़े, डगमगाती नाव है।
पार जाने का जरा भी नहीं मिलता दाव है।
निशि अंधियारी.... शरण....।। ५ ।।

मोह दस्यु है सदल वल, संसार सागर में सदा।
भ्रमण करता देख अवसर, न जाने आवे कदा।
मैं निर्वल नारी.... शरण ....।। ६ ।।

मिथ्यात्व सबमें प्रबल योद्धा, कैसे इससे जय मिले।
यह सेनानी मोह का इसके विजय से सब हिले।
प्रभु लो विचारी…… शरण…… ॥ ७ ॥

करो करुणादृष्टि दर्शनमोह का ज्यों नाश हो।
नष्ट हो अज्ञान तम, सज्ज्ञान का सुप्रकाश हो।
तिमिर निवारी…… शरण…… ॥ ८ ॥

क्रोध मद माया तथा वह लोभ फिर रहता नहीं।
अर्द्ध पुद्गलपरावर्तन काल में मुक्ति सही।
स्वगुण विहारी…… शरण…… ॥ ९ ॥

चारित्रमोह निर्बल बने, बलवान हों चित् शक्तियाँ।
ज्ञानादि श्रेष्ठ चतुष्क की, हो जाये द्रुत अभिव्यक्तियाँ।
बने शिवचारी…… शरण…… ॥ १० ॥

सिद्धि पथदर्शक हमारा, पथ प्रदर्शन कीजिये।
प्रणत है श्री चरण में, विनयाभिवन्दन लीजिये।
'सज्जन' तुम्हारी शरण…. ॥ ११ ॥



१९. मल्लिनाथ जिन स्तवन

[तर्ज—पनिहारी हुकम करो तो सासू जल]

मल्लि जिनेन्द्र मेरी विनती सुन लेना,
आई हूँ शरण तुम्हारी ॥ स्थायी ॥

कुम्भ नृपति प्रभावती नन्दन, शिवसुख कन्दा सुखकारी।
जगदीश्वर जगतिलक जगतरवि, जगजीवन जगहितकारी ॥ १ ॥
भव अर्णव है महा भयंकर, फिरते अगणित जलचारी।
भांति भांति के मगरमत्स्य जहाँ, क्षुद्र और महा देहधारी ॥ २ ॥

पर्वत सी ऊँची लहरों पर, जब चढ़ती तरणी प्यारी।
दो लहरों के मध्य में आकर, लगता ये डूबी सारी ॥ ३ ॥
मन मांझी मेरा मनमौजी, स्वच्छन्द और स्वेच्छाचारी।
इच्छा हो तो डांड चलाये, नहीं रहे कर पे कर धारी ॥ ४ ॥
मैं भूली अपनी शक्ति को, पूर्व कर्मवश हो भारी।
विवश हो रही दुःख भोगने, बन्दी हूँ है लाचारी ॥ ५ ॥
कृपादृष्टि की एक झलक भी, जो हो जाये इसवारी।
धन्य धन्य कृतपुण्य बनूँ मैं, मानूं सफल ये अवतारी ॥ ६ ॥
भवसागर में मेरी यह नैया, डगमग डोले बेचारी।
राग द्वेष मद मोह सतावे, कैसे जाऊँ मैं उसपारी ॥ ७ ॥
जीव अनेकों तारे हैं तुमने, अबके है मेरी वारी।
करुणा करके पार लगाओ, आप हो प्रभु करुणाधारी ॥ ८ ॥
किसकी जाके शरण गहूँ मैं, आप सदृश नहीं जगतारी।
केवल आपकी आशा है मुझको, तारो अरजी अवधारी ॥ ९ ॥
भवसिन्धु से सुखसिन्धु में, ले जाओ हे भवतारी।
भगवन् ! आपहो मुक्ति के दाता, हो त्रैलोक्य के हितकारी ॥ १० ॥
सुरगण पूजित तव पद पंकज, पाये आज आनन्दकारी।
ज्ञानोपयोग की ज्योति जगादो, ज्यों 'सज्जन' हो भवपारी ॥ ११ ॥

□

२०. मुनिसुव्रत जिन स्तवन

[तर्ज—राधेश्याम....]

श्री मुनिसुव्रत सुव्रत धर कर तीर्थंकर कहलाते हैं।
स्याद्वाद से सप्तभंगी का, सत्स्वरूप बतलाते हैं ॥ स्थायी ॥

वृक्ष अशोक वना संगति से, मन हर्षित हो जाते हैं।
पुष्पों के बंधन नीचे हो, मृदु सुरभि फैलाते हैं ॥ १ ॥

दिव्यध्वनि है योजनगामिनी, सुरनर-तिरि सुन पाते हैं।
पाप ताप सन्ताप सभी तो, उन सबके मिट जाते हैं ॥ २ ॥

चामरयुग्म ढुलकते दोनों, ओर यही समझाते हैं।
नमन करो इन चरणों में ये पतित पावन कहलाते हैं ॥ ३ ॥

हेमाद्रि तुल्य वर स्फटिक सिंहासन, पर प्रभु शोभा पाते हैं।
भामण्डल की शान्तोज्ज्वल छवि, देख भविक सुख पाते हैं ॥ ४ ॥

गगनाङ्गण में तव महिमा की, दुन्दुभि देव बजाते हैं।
आओ-आओ भव्य यहां ये, अशरण शरण कहाते हैं ॥ ५ ॥

तीन छत्र राजत शिर पर त्रिभुवन प्रभुता दर्शाते हैं।
सर्वोत्तम दर्शन पा दर्शक, धन्य-धन्य बन जाते हैं ॥ ६ ॥

जलधर सम तव श्याम वदन लख, भवि मयूर हर्षाते हैं।
नयन युगल तव शान्त सुधा की, सलिल धार वर्षाते हैं ॥ ७ ॥

जिसको तृषित भक्तजन पीकर, खूब तृप्त हो जाते हैं।
जन्म मरण संसारभ्रमण सब, उनके द्रुत मिट जाते हैं ॥ ८ ॥

सुरनर मुनिगण कविगण मिलकर यश निशिदिन ही गाते हैं।
विस्मय है पर आपके गुण का, पार नहीं वे पाते हैं ॥ ९ ॥

देना सुव्रत मुनिसुव्रत जिन ! दाता आप कहाते हैं।
निरुपम आनन्द शीघ्र दीजिये, विनति यही सुनाते हैं ॥ १० ॥

शुभतम ज्ञानोपयोग प्रदाता, आपमें बस रम जाते हैं।
'सज्जन' जन तव शरण प्राप्त कर, भवजल से तिर जाते हैं ॥११॥



२१. नमि जिन स्तवन

[राग मांड—नखराली ए मूमल हालो नी झट चालो आलीजा रे देश]

पाया प्रबल पुण्य के परमोदय से श्री जिन दर्शन आज—॥ स्थायी ॥

श्री जिन दर्शन आतमदर्शन हेतु है।
पाया दर्शन दर्शन काज ॥ १ ॥

श्री जिन दर्शन भव सरिता का सेतु है।
दर्शन है भव तरण जहाज ॥ २ ॥

श्री जिन दर्शन निर्मल शीतल नीर है।
पान से ताप त्रय जाये भाज ॥ ३ ॥

श्री जिन दर्शन सुखप्रद मलय समीर है।
स्पर्श से दूर हो सारे भव दुःख दाझ ॥ ४ ॥

श्री जिन दर्शन सुरतरु गृह आँगण फले।
सिद्ध हों सारे मुझ मन वांछित काज ॥ ५ ॥

श्री जिन दर्शन रत्न चिन्तामणि मिले।
चिन्ता दूर हो पावे सब सुख साज ॥ ६ ॥

श्री जिन दर्शन विन पाये भव सिन्धु में।
भ्रमण करावे महाबली मोहराज रे ॥ ७ ॥

श्री जिन दर्शन पाकर भवि होते सदा।
कर्म क्षय कर त्रिभुवन के शिरताज ॥ ८ ॥

श्री जिन दर्शन पाया स्वर्ण सुयोग में।
ज्ञान से जागा सुप्त ये चेतन राज ॥ ९ ॥

श्री जिनवर तुम दर्शन के अभाव में।
विभाव में रमते हो गया आतम अकाज ॥ १० ॥

पद पंकज में 'सज्जन' की यह प्रार्थना।
स्वीकृत कर प्रभु दो दर्शन मुझ आज ॥ ११ ॥



२२. नेमिजिन स्तवन

[तर्ज-मारवाड़ी—लोटन करवा की]

प्रभु नेमि सांवरिया, तोरण से रथ फेर चले गिरनार....॥ स्थायी ॥

शिवा देवी के लाडले जिनजी रे....
सुखकारी रे प्रभु नेमि सांवरिया,
यदु कुल सरवर राजहंस श्री कार....॥ १ ॥

पावस घन सम वर्ण हैं जिनजी रे....
शिवकारी रे प्रभु नेमि सांवरिया,
देख देख कर हर्षित खग परिवार....॥ २ ॥

नील ज्योति लख दूर हो जिनजी रे....
भयहारी रे प्रभु नेमि जिनन्दा,
तन मन के त्रय ताप सन्ताप प्रचार....॥ ३ ॥

मित्रों के संग खेलते प्रभुजी रे....
मनहारी रे प्रभु नेमि जिनन्दा,
आये प्रभुजी कृष्ण के शस्त्रागार....॥ ४ ॥

क्रीड़ा वश शंख वजाया प्रभुजी रे....
सुखकारी रे प्रभु नेमि जिनन्दा,
कम्पित हो गया नाद से सव संसार....॥ ५ ॥

शंख ध्वनि सुन चमके यदुपति रे....
शिवकारी रे प्रभु नेमि जिनन्दा,
चिन्ता हो गयी मन में अपरम्पार....॥ ६ ॥

यादव कुल में सर्वाधिक प्रभु रे....
भयहारी रे प्रभु नेमि जिनन्दा,
महा बलवान् है अरिष्टनेमि कुमार....॥ ७ ॥

सम्बन्ध करे राजुल साथ में जिनजी रे....
मनोहारी रे प्रभु नेमि जिनन्दा,
ब्याहन आये उग्रसेन नृप द्वार....॥ ८ ॥

पशुओं का करुण क्रन्दन सुन जिनजी रे....
सुखकारी रे प्रभु नेमि जिनन्दा,
बन्धनमुक्त करावे करुणागार....॥ ९ ॥

रथ को मोड़के चल दिये जिनजी रे....
शिवकारी रे प्रभु नेमि जिनन्दा,
देख के विस्मित थे यादव नरनार....॥ १० ॥

दृश्य देख के मूर्छित हुई राजुल रे....
मनोहारी रे प्रभु नेमि जिनन्दा,
तोड़े कंकण छोड़े सब शृंगार....॥ ११ ॥

मैं प्रियतम पथ सँचरू सखियाँ रे....
जयकारी रे सती राजमती कहे,
मेरे तो प्रभु एक ही मात्र आधार....॥ १२ ॥

पति पद का अनुसरण ही सखियों रे,....
तुम सुनलो रे मेरी प्यारी सखियो,
है सतियों का यही परम आचार....॥ १३ ॥

दीक्षा ले पति पूर्व ही राजुल रे,—
सुखकारी रे सती राजीमती ने
पति से पहले खोले मोक्ष के द्वार....॥ १४ ॥

अद्भुत जग में नेम-राजुल की जोड़ी रे····
शिवकारी रे प्रभु नेमि जिनन्दा,
सज्जन करते वन्दन वारम्वार--॥ १५ ॥



२३. पार्श्व जिन स्तवन

[तर्ज—पणिहारी········]

विनती यह सुन लीजिये श्री पार्श्व जिनन्द····
आप हैं जगदाधार···· जय जय जिनचन्द ॥ स्थायी ॥

अश्वसेन नृप नन्द तुम, वामाङ्गज देव,
पुरुषादानी पार्श्व सुर नर करे सेव···· ॥ १ ॥

दुष्ट कमठ हठ देखके, दया दिल में धार,
जलता बचाया नाग, धन्य कहे संसार···· ॥ २ ॥

भव दावानल में प्रभु, जलती हूँ मैं नाथ,
हैं दुःख अपरम्पार, पकड़ो मेरा हाथ···· ॥ ३ ॥

वाहर मुझको निकालिए, हे करुणागार,
मैटो प्रभु त्रय ताप, वर्षा के सुधाधार···· ॥ ४ ॥

अव तो मैं हारी प्रभु, फिरती गति चार,
देदो अविचल धाम भवभ्रमण निवार···· ॥ ५ ॥

चिन्तामणि चिन्ता हरो, मेरी इस वार,
शरणागत प्रतिपाल, चिन्तित दातार···· ॥ ६ ॥

अभिलाषा मेरी यही, सुनिये जी सरकार,
तोड़ो कर्म की जाल, ज्यों करूं आत्मोद्धार···· ॥ ७ ॥

दीन अवस्था देख के, कुछ करिये संभार,
तव चरणों का आधार, मुझको जगतार····॥ ८ ॥

आनन्द सिन्धो ! आपके पद पद्म प्रधान,
शान्तिदायक सुखकार, पूंजूं करूं गुणगान.... ॥ ९ ॥

अनुपम ज्ञान की ज्योति से, हटे मोहान्धकार,
पाकर शुभ उपयोग, 'सज्जन' हो भवपार.... ॥ १० ॥



२४. महावीर जिन स्तवन

[तर्ज—वीणावादिनी वर दे]

वीर महावीर की जय हो—जय हो ऽऽऽ— जय हो ऽऽऽ
सुर नर वन्दित जग अभिनन्दित, विश्व ज्योति जय हो....॥स्थायी॥

मातृ कुक्षि में अचल हुये जब, मातृ दुःख वश नियम लिया तब,
पितरौ जीवित व्रत न धरूं अब, मातृभक्त ! जय हो....॥१ ॥

सुरपति मन में संशय आया, सिंहासन अंगुष्ठ दबाया,
जन्मोत्सव में मेरु कंपाया, अतुलबली ! जय हो....॥ २ ॥

शैशव में आमलकी क्रीड़ा, हारा सुर पाया अति व्रीड़ा,
मेटी सबकी मानस पीड़ा, अपराजित ! जय हो....॥ ३ ॥

भ्रातृ प्रेमवश वर्ष द्वय तुम, रहे धाम पर संयम मय तुम,
उच्चादर्श प्रदर्शित कर तुम धन्य बने ! जय हो....॥ ४ ॥

शूलपाणि पर करुणा दृष्टि, चण्डकौशिक पर सुधा की वृष्टि,
संगम पर भी दया सुदृष्टि, क्षमामूर्ति ! जय हो....॥ ५ ॥

टूटे चन्दनवाला वन्धन, उड़द बाकुले ले भिक्षाशन,
दुन्दुभि नाद हुआ गगनाङ्गण, वोले सुर जय हो''''॥ ६॥

इन्द्रजालिक है कहते आये, इन्द्रभूति प्रधान वनाये,
मेघकुमर की दुविधा मिटाये, तीर्थङ्कर ! जय हो''''॥ ७॥

आयी मुक्तिगमन की वेला, दूर किया गौतम सा चेला,
इस जग में क्षण भर का मेला, सिद्ध किया जय हो''''॥ ८॥

हाहारव देवों का सुनकर, स्तब्ध हो गये गौतम गणधर,
कर विलाप फिर सोचा क्षण भर, वीतराग ! जय हो''''॥ ९॥

क्षीण मोह वे मैं अनुरागी, अन्तर्दृष्टि आत्म में लागी,
सुप्त शक्तियाँ तत्क्षण जागीं, दिया स्व-पद जय हो''''॥१०॥

पंच विंश निर्वाण शताब्दे, कान्ति सिन्धु गुरुदेव प्रसादे,
'सज्जन' गावे मधुर निनादे, वर्द्धमान जय हो''''॥ ११॥



२५. चतुर्विंश जिन स्तवन

[तर्ज—नाकोड़ा स्वामी'''']

तीर्थङ्कर वन्दूं पाप निकन्दूं वर्तमान चौवीश,
धन दिन मेरा मंगल सवेरा, चरण नमाऊँ शीश ॥ स्थायी ॥

श्री आदीश्वर चरण में रे, अविचल रहे मम भक्ति,
दर्शन पूजन स्तवन में रे, बढ़ती रहे अनुरक्ति । तीर्थ''''॥ १॥

अजित जिनेन्द्र सुस्मरण से रे, बने अजित भविलोक,
कर्म शत्रु का नाश कर रे, जाय बसे शिवलोक । तीर्थ''''॥ २॥

श्री सम्भव पद कमल सर रे, अवगाहन कर शुद्ध,
आत्मरत्न उज्ज्वल बने रे, चेतन हो प्रतिबुद्ध । तीर्थ''''॥ ३॥

अभिनन्दन जिनराज का रे, अभिनन्दन कर आज,
जीवन और रसना सफल रे, धन्य करी मैं आज। तीर्थ····॥४॥

सुमतिनाथ आराधना रे, कुमति हटावे दूर,
सुमति प्रकट कर आत्म में रे, भरे सुगुण भरपूर। तीर्थ····॥५॥

श्री पद्मप्रभ चरण युग रे, भेंटी लह्यं आनन्द,
नयन सफल थया माहरा रे, निरखी प्रभु मुख चन्द। तीर्थ····॥६॥

मन मोहन सुपार्श्व जिन रे, सुन लो यह अरदास,
दुविधा सारी दूर कर रे, पूर्ण करो मन आश। तीर्थ····॥७॥

चन्द्रप्रभ मुखचन्द्र लख रे, मुदित चित्त चक्रवाक,
चिर बुभुक्षित दीन को रे, मिली क्षीर शत पाक। तीर्थ····॥८॥

सुविधि कृपा से आत्म यह रे, करे सुविधि शुभ कार्य,
जिससे निर्मल चित्त हो रे, तज दे सभी अकार्य। तीर्थ····॥९॥

आधि व्याधि आरति टले रे, जन्म मरण और पाप,
शीतल जिनपति स्मरण से रे, मिटे सकल संताप। तीर्थ····॥१०॥

श्री श्रेयांस नमूं सदा रे, आत्म श्रेय कर काज,
हो अनिष्ट सब नष्ट अब रे, दीजे यही महाराज। तीर्थ····॥११॥

वासुपूज्य पूजा सदा रे, करिये धरि शुभ भाव,
पूजत सुख सम्पति मिले रे, होय रंक से राव। तीर्थ····॥१२॥

विमलनाथ हरो कर्ममल रे, आत्म विमल करो देव,
वार बार विनती विभो रे, अवधारो मुझ सेव! तीर्थ····॥१३॥

अनन्त चतुष्टय की भरी रे, तुझ में राशि अखूट,
सावधान चेतन रहे रे, कर्म अरि न ले लूंट। तीर्थ····॥१४॥

वीतराग मुद्रा सदा रे, हरे त्रिविध सन्ताप,
आत्मधर्म प्रकटे विमल रे, धर्म जिनेन्द्र प्रताप। तीर्थ····॥१५॥

शान्ति नाथ ! अब शान्ति दो प्रभु, हरो अशान्ति क्लेश,
द्वेष कदाग्रह दूर करके, शान्ति करो हे जिनेश । तीर्थ····॥१६॥

पुद्गल प्रीति स्व-धर्म का रे, करती निशदिन ह्रास,
हो विरक्त इससे तभी रे, करे आत्म सुविलास ! तीर्थ····॥१७॥

अगम अथाह भवाब्धि में रे, पड़ी नाव भगवान्,
पार लगावो अब इसे रे, तुम हो दया निधान । तीर्थ····॥१८॥

मल्लिनाथ भगवान् के रे, चरणों का आधार,
जग की आशा छोड़ कर रे, मैंने लीना धार । तीर्थ····॥१९॥

हे प्रभो ! तव प्रभुता अगम है, कैसे पाऊँ पार,
मैं अल्पज्ञ शिरोमणि हूँ रे, दो सद् सुव्रत विचार । तीर्थ····॥२०॥

जीवन नौका मेरी हे प्रभो !, पड़ी भंवर में आय,
पार लगादो आप अब रे, श्री नमि जिनवर राय । तीर्थ····॥२१॥

नेमिनाथ वन्दूं सदा रे, ब्रह्मचारी भगवान्,
पादपद्म सेवत मिले रे, अविचल आनन्द स्थान । तीर्थ····॥२२॥

श्री चिन्तामणि पार्श्वजिनपति इच्छित फल दातार,
"सज्जन" चिन्ता दूर करके, भर दो ज्ञान भण्डार । तीर्थ····॥२३॥

महावीर दो वीरता प्रभु, कायरता करो दूर,
धीर वीर गम्भीर बनूं रे, कर्म करूं चक चूर । तीर्थ····॥२४॥

चौवीस तीर्थवन्दना करके, धन्य बनी मैं आज,
ज्ञानोपयोग प्रसाद से रे, शीघ्र मिले शिवराज । तीर्थ····॥२५॥



२६. श्री वीर निर्वाण स्तवन

गौतम विलाप—[अखण्ड सौभाग्यवती]

महावीर गये निर्वाण, मुझे क्यों छोड़ गये—
गौतम करते हैं विलाप, मुझे क्यों छोड़ गये ।।स्थायी।।

गौतम ने दुन्दुभिनाद सुना, मुझ को ही क्यों उपदेष्टा चुना ।
भेजा क्यों अन्य स्थान, मुझे....।। १ ।।

मैंने जाना मेरे स्नेही हैं, मेरे जैसे ही देही हैं ।
देते मुझको सम्मान, मुझे....।। २ ।।

गौतम ! संबोधन जब करते, मेरे सारे संशय हरते ।
नहीं रखते किञ्चिद् व्यवधान, मुझे....।। ३ ।।

प्रभु पाद पद्म में मधुकर बन, मोहित रहता था मैं प्रतिक्षण ।
हा ! कैसा रहा अनजान, मुझे....।।४।।

वीतराग हैं ये मैंने जाना नहीं, कभी छोड़ेंगे यह भी माना नहीं ।
धिग् धिग् यह मोह अज्ञान, मुझे....।।५।।

वीतराग वे मैं अनुरागी था, पर मैं भी तो सर्वत्यागी था ।
फिर क्यों छोड़ा भगवान्, मुझे....।।६।।

अहो जाना स्व के सब कर्ता, स्व-स्व कर्मों के ही हर्ता ।
सब आतम स्वतन्त्र विधान, मुझे....।।७।।

यों जड़ चेतन का विभेद किया, घाती कर्मों का छेद किया ।
तब हो गया केवलज्ञान, गौतम अरिहन्त हुये....।।८।।

गुरु गौतम "सज्जन" अभिनन्दित, प्रातः जपते नव नव सम्पद् ।
समृद्धि सिद्धि सज्ज्ञान, गौतम अरिहन्त हुये....।।९।।

—□—

२७. महावीर जिन स्तवन

[तर्ज—भर भर जाम . . .]

जय त्रिशला नन्दन वीर विभो, जय जय हे जगदाधार ।।स्थायी।

करुणा क्षीर सिन्धु के तुम, थे कौस्तुभमणि सुन्दर अनुपम ।
त्याग तुम्हारा सर्वोपरि था, थे तुम दयावतार, जय.... ।।१।

जीवन समुद्र को चिन्तन द्वारा, मथकर अमृत पिलाया सारा ।
भव्य लोक सब तृप्त हुये कर पान सुधा-सी धार, जय.... ।।२।

दीर्घ तपस्वी तुम कहलाये, तुम पर क्रूरोपसर्ग भी आये ।
तुम्हें डिगाता कौन मेरु सम, थे तुम अचलाकार, जय.... ।।३।

जब तुम आये थे भूतल पर, भारत में था दुःख प्रबलतर ।
धर्म नाम पर पशु-बलि का था, यहाँ पर प्रचुर प्रचार, जय.... ।।४।

धर्म धर्म वे कहते जाते, दीन दुःखी जीवों को सताते !
प्राण तुम्हारे कांप उठे, सुन कर यह अत्याचार, जय.... ।।५।

रक्षक उनके बनकर आये, तुमने सबको अभय बनाये ।
होता धर्म दया में ही यह सब धर्मों का सार, जय.... ।।६।

जग उद्धारक वीर तुम्हारा, सार्थक है अभिधान यह प्यारा ।
काम उच्च निष्काम ! जगत को, सिखा गये जगतार जय.... ।।७।

भगवन् वही समय फिर आया, हिंसा ने सब जग को सताया,
आनन्दप्रद तव वचन सुधा की बरषादो जलधार, जय.... ।।८।।

अनुपम ज्ञान भानु समुदित हो, विश्वलोक सब ही प्रमुदित हो ।
शुद्धोपयोग को पाकर 'सज्जन', करे स्व-पर उपकार, जय.... ।।९।।



२८. श्री नवपदजी का स्तवन

(राग—माँड—नाकोड़ा स्वामी)

श्री सिद्धचक्र ध्यावो, वांछित पावो, गावो नित गुणगान।
करो नव पद पूजा, मन्त्र न दूजा, जग में इसके समान ॥स्थायी॥

ॐ अर्हं पद प्रथम स्थान में, अर्हं करदो भेट।
रेफ चढ़ा दे अर्हं के ऊपर, जन्म मरण दे मेट–रे श्री ॥ १ ॥
सिद्ध प्रभु का नाम स्मरण ही, वशीकरण का मन्त्र।
सर्व सिद्धियों का दाता है, सिद्धचक्र का यन्त्र–रे श्री ॥ २ ॥
सूरीश्वर पद तृतीय शोभे, स्वर्ण वर्ण सुविशाल।
संघ के पालक संघ संचालक, करते संघ सम्भाल–रे श्री ॥ ३ ॥
उपाध्याय पाठक वाचक का, संघ में सम्मन्य स्थान।
श्रुतज्ञान की ज्योति जागृत कर, दूर करे अज्ञान–रे श्री ॥ ४ ॥
साधु साधक आत्म सिद्धि के, रत्नत्रय को धार।
प्रवचन माता अष्ट सहित नित, पाले पंचाचार–रे श्री ॥ ५ ॥
सम्यग्दर्शन जब तक नहीं हो जीव भ्रमे संसार।
आतमादि षड् द्रव्य श्रद्धामय, तत्वस्वरूप विचार–रे श्री ॥ ६ ॥
ज्ञान विना आत्मा को स्वपर का, नहीं होता अवबोध।
बाल अज्ञानी कर्म शत्रु का, कर न सके प्रतिरोध–रे श्री ॥ ७ ॥
अष्ट कर्म क्षय रिक्त है करता, सम्यक् चारित्र सार।
धन्य धन्य कृतपुण्य वे आत्मा, मुनिव्रत लेते धार–रे श्री ॥ ८ ॥
अनशनादि द्वादश विधि तप की, ज्वाला का शिखा जाल।
भव भव संचित कर्म निकाचित, नष्ट करे तत्काल–रे श्री ॥ ९ ॥
सिद्धचक्र है धर्मचक्री का, अद्भुत चक्र अनूप।
कर्मचक्र का भेदन करके, आतमा बने शिव भूप–रे श्री ॥ १० ॥
पुण्यानुबन्धी पुण्योदय से, मिल गया स्वर्ण सुयोग।
ज्ञानोद्योत हो 'सज्जन' मन में स्वगुण करे उपभोग–रे श्री ॥ ११ ॥

—□—

२९. सीमन्धर जिन स्तवन

[तर्ज—थोड़े दिन की जिन्दगानी]

महाविदेह में जाना ओ चन्दा ! मेरा सन्देश सुनाना,
कुछ यहाँ का हाल वताना ।।स्थायी।।

पुष्कलावती विजय में हैं सीमन्धर भगवान्,
स्वर्ण वर्ण तन अति ही मनोहर धनुष पञ्च शतमान ।
लंछन वृषभ सुहाना....ओ.... ।। १ ।।

रजत स्वर्ण रत्न प्राचीरें, है समवसरण सुख खान,
स्फटिक रत्न सिंहासन पर प्रभु, रहते विराजमान ।
है चामर छत्र प्रधाना....ओ.... ।। २ ।।

चैत्य वृक्ष है अधोभाग में, ऊपर वृक्ष अशोक,
यशो दुन्दुभि देव वजाते, भामण्डल आलोक ।
आते देव विमाना....ओ.... ।। ३ ।।

द्वादश पर्षद् सुने प्रभु वाणी, कोई उत्थित आसीन,
नत मस्तक विनयाञ्जलि जोड़े, मानस प्रभु पद लीन ।
निर्निमेष दृगवाना....ओ.... ।। ४ ।।

नहीं यहाँ पर अवधिज्ञानी, श्रुत का नहीं विशिष्ट प्रकाश,
सब यों कहते हम ही सच हैं कैसे हो विश्वास ।
तू तत्व पूछ के आना....ओ.... ।। ५ ।।

भिन्न भिन्न मति हैं जग में कोई कहते बस व्यवहार,
निश्चयवादी मात्र ज्ञान को, कहते यही है सार ।
यह संशय पूछ मिटाना....ओ.... ।। ६ ।।

यद्यपि दोनों वाहन के ये, चक्र हैं अति प्रधान,
एक चक्र का वाहन अधूरा, जाने सब बुद्धिमान ।
फिर भी झूठा हठ ठाना....ओ.... ।। ७ ।।

आगम में सत्य कहाते, चारों ही निक्षेप,
स्थापना का निषेध करते, मति विभ्रम विक्षेप।
इसको दूर हटाना"" ओ""॥ ८ ॥

पूजा में पाप बताते, जिन दर्शन में भी दोष,
प्रतिमा को पत्थर बतलाते, करे धर्म उद्घोष।
ऐसा भ्रम जाल फैलाना""ओ""॥ ९ ॥

हम भरत क्षेत्र के वासी बिन दर्शन रहें उदास,
मन मधुकर प्रभु पदपंकज की चाहे सुखद सुवास।
करुणाकर हमें बुलाना""ओ""॥१०॥

हम कैसे जाने सत्पथ नहीं, पंथ दर्शक है साथ,
बन्धु शशधर मन की बातें, कहना जोड़कर हाथ।
'सज्जन' की शंका मिटाना""ओ""॥११॥



३०. चैत्री पूर्णिमा स्तवन

[तर्ज—छोटा सा बलमा मोरे]

प्रथम गणधर श्री पुण्डरीक, वन्दूं सिद्धाचल पर,
भव भव संचित सारे कर्म, निकन्दूं सिद्धाचल पर॥ स्थायी ॥

भरत चक्री के पुत्र, श्री पुण्डरीक स्वामी।
पञ्च कोटि मुनि साथ, आये सिद्धाचल पर॥ १ ॥

पादोपगमन संस्तारक, करके ध्यान लगाया।
तब कर्मों से मुक्ति, पाये सिद्धाचल पर॥ २ ॥

चैत्री पूर्णिमा शुभ पर्व, है तब से कहलाया।
भव्य जीव यात्रार्थ, आवें सिद्धाचल पर॥ ३ ॥

सकल तीर्थ सिर सेहरा, विमलाचल गिरिवर ।
अनन्तजीव सिद्धि स्थान, पाये सिद्धाचल पर ॥ ४ ॥

नरक तिर्यंच गति दूर हो, शत्रुंजय भेटें ।
विमल अमल हो यह आत्मा, श्री सिद्धाचल पर ॥ ५ ॥

कर्म अष्ट द्रुत नष्ट हो, वर वसु गुण प्रकटे ।
अनुपम आनन्द प्राप्त, होवे सिद्धाचल पर ॥ ६ ॥

आत्मोत्कर्ष हो तीर्थ पर, प्रभु ध्यान लगाते ।
कण कण हुआ है पवित्र, जायें सिद्धाचल पर ॥ ७ ॥

मरुदेवी के नन्द, प्रथम प्रभु ऋषभदेव जी ।
पूर्व नव नवति वार, आये सिद्धाचल पर ॥ ८ ॥

नमि विनमि ऋषभेश, पालित पुत्र द्वय भी ।
अष्टकर्मों से मुक्ति, पाये सिद्धाचल पर ॥ ९ ॥

आभा नृपति कुक्कुट बने, स्व अशुभोदय से ।
पुनः मानव की देह, पाये सिद्धाचल पर ॥ १० ॥

ज्ञानोपयोग की ज्योति से, मोहतम हट जावे ।
"सज्जन" मन अति मोद, पावे सिद्धाचल पर ॥ ११ ॥

---

३१. अक्षय तृतीया का स्तवन

(तर्ज—सावन का महीना""")

प्रभु ऋषभ पधारे हस्तिनापुर में आज,
आओ आओ सब मिल चालो सजो मंगलमय साज । प्रभु ॥ स्थायी ॥

कोई कहे गज भेंट करेंगे, उत्तम अश्व की भेंट धरेंगे ।
रत्न वस्त्र कन्या ले लो प्रभु के काज""आओ""॥ १ ॥

द्वार द्वार पर प्रभु हैं आते, कुछ नहीं लेते आगे ही जाते ।
हैं त्यागी और विरागी त्रिभुवन के शिरताज""आओ"" ॥ २ ॥

आगे प्रभु हैं पीछे नगरजन, साथ में लेकर श्रेष्ठ श्रेष्ठ धन ।
कहते हैं विनय से, कुछ लेलो हे महाराज.... आओ....॥ ३ ॥

राजभवन के वातायन से, देखा श्रेयांस ने प्रभु को नयन से ।
जातिस्मरण से जाना, प्रभु फिरते भिक्षा काज.... आओ....॥ ४ ॥

भिक्षाविधि से अज्ञ जन हैं, प्रभु का तपः कृश हो रहा तन है ।
है कर्म कैसा निर्दय, नहीं छोड़े जिनराज.... आओ....॥ ५ ॥

झटपट दौड़ कर नीचे आया, चरण कमल में शीश झुकाया ।
दादा हमारे आओ, हे तारण तरण जहाज.... आओ....॥ ६ ॥

एक वर्ष निराहार बिताया, अन्तराय कर्म उदय में आया ।
अब मेरा भाग्य जगाया, पधारो गरीब-निवाज.... आओ....॥ ७ ॥

मेरे आँगन को पावन करिये, इक्षु रस से पारणा करिये ।
धन्य जीवन मेरा पाये हैं दर्शन आज.... आओ.... ॥ ८ ॥

करपात्री प्रभु-अन्जलि करके, पान किया रस यथेष्ट भरके ।
अहो दान की दुन्दुभि, रही गगन में गाज.... आओ.... ॥ ९ ॥

नीर सुगन्धित पुष्पों की वृष्टि, हो रही पुलकित सारी सृष्टि ।
साढ़े बारह-कोटि सौनेया बरसे आज.... आओ.... ॥ १० ॥

धन्य धन्य आदीश्वर स्वामी, धन्य श्री श्रेयांस सुनामी ।
"सज्जन" करते अभिनन्दन, अक्षय तृतीया दिन आज....आओ ॥ ११॥

-□-

३२. अक्षय तृतीया का स्तवन

(तर्ज—आओ पधारो महावीर)

जय हो आदीश्वर भगवान्, ओ वर्षीतप वाले.... ।
जय हो ऋषभ भगवान्, ओ वर्षीतप वाले ! ॥ स्थायी ॥

इक्ष्वाकु कुल कमल दिवाकर, मरुदेवी नन्दन विश्व उजागर,
शिक्षक ज्ञान विज्ञान....ओ वर्षीतप वाले.... ॥ १ ॥

युगलिक जन आचार हटाया, रीति नीति व्यवहार बताया,
सर्व विधि व विधान.... ओ वर्षीतप वाले.... ॥ २ ॥

चार सहस्र संग व्रत को धारें, निशदिन आत्मस्वरूप विचारें,
षष्ठ भक्त प्रत्याख्यान.... ओ वर्षीतप वाले.... ॥ ३ ॥

कोई गज रथ घोड़े लावें, मणि माणिक मुक्ताफल लावें,
भिक्षाविधि से अजान.... ओ वर्षीतप वाले.... ॥ ४ ॥

वीतराग प्रभु मौन के धारी, अन्तराय का उदय विचारी,
धारें तपस्या प्रधान.... ओ वर्षीतप वाले.... ॥ ५ ॥

वर्ष दिवस तक रहे अनाहारी, ऐसी उत्तम तपस्या धारी,
धन्य धन्य गुणखान.... ओ वर्षीतप वाले.... ॥ ६ ॥

श्री श्रेयांस कुमर बड़भागी, पुण्यवान् सद्धर्मानुरगी,
दें इक्षुरस दान.... ओ वर्षीतप वाले.... ॥ ७ ॥

पञ्चदिव्य तब सुर प्रकटावें, धन्य धन्य श्रेयांस कहावें,
सुर नर करें गुणगान.... ओ वर्षीतप वाले.... ॥ ८ ॥

सुख सिन्धो भगवान् तुम्हारी, त्रिभुवन के सुर नर और नारी,
करे भक्ति एक तान.... ओ वर्षीतप वाले.... ॥ ९ ॥

हरिपूज्य प्रभु केवल पाये, कर्म क्षय कर मोक्ष सिधाये,
पाये आनन्द महान्.... ओ वर्षीतप वाले.... ॥ १० ॥

ज्ञान की ज्योति घट में जगादो, सद्उपयोग में जीवन लगादो,
"सज्जन" माँगें वरदान.... ओ वर्षीतप वाले.... ॥ ११ ॥



३३. श्री वर्द्धमान तप स्तवन

(तर्ज—यात्रा नवाणुं करिये)

वर्द्धमान तप करिये रे, प्राणी वर्द्धमान तप करिये,
करके शिव सुख वरिये रे प्राणी····· ।। स्थायी ।।

अष्टम अंगे वीर प्रभु ने, विविध तपस्या बताई,
आयंबिल वर्द्धमान तपोविधि, इस प्रकार दिखलाई रे।
प्राणी················ ।। १ ।।

एक आयंबिल करके भविजन, पारणे उपवास कीजे,
दो आयंबिल उपवास ऊपर, आंबिल तीन करीजे रे।
प्राणी················ ।। २ ।।

अनुक्रमे पाँच आयंबिल करके, पारणे कीजे उपवास,
एक ओली यों पूर्ण है होती, कहते वीर प्रभु खास रे।
प्राणी················ ।। ३ ।।

दश पर्यन्त दूसरी ओली, उपवास पारणे आवे,
शत संख्या तक बीस ओली में तप समाप्ति हो जावे रे।
प्राणी················ ।। ४ ।।

पाँच हजार पचास आयंबिल, उपवास एक सौ एक,
चौदह वर्ष तीन मास बीस दिन, लगते हैं सुविवेक रे।
प्राणी················ ।। ५ ।।

प्रतिक्रमण दोनों संध्या में, देव वन्दन भी करिये,
अरिहन्त पद का गुणना काउसग्ग, नमस्कार आचरिये रे।
प्राणी················ ।। ६ ।।

कर्म निर्जरा कारण यह तप, करिये चढ़ते भावे,
कलिमल हरण आतमशुद्धि कारक, जैन सिद्धान्त बतावे रे।
प्राणी················ ।। ७ ।।

प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव की, ब्राह्मी सुन्दरी कन्याएँ,
संयम शील रक्षा हित धारा, बड़भागिनी धन्याएँ रे।

प्राणी.................. ॥ ८ ॥

इस पद के सुपुण्य प्रभाव से, श्रीचन्द्र नृप सिरताज,
राज्य भोग सुख सम्पदा अतुलित, और पाये शिवराज रे।

प्राणी.................. ॥ ९ ॥

महामंगलमय तप है उत्तम, शुद्ध भावयुत धरिये,
श्री हरि पूज्य गुरु उपदेशित, सुविहित पथ अनुसरिये रे,

प्राणी.................. ॥ १० ॥

युग्माश्ववेद युग मितवीराब्दे, आश्विन् मास सुहावे,
"ज्ञानोपयोग" प्रसादे "सज्जन" तप महिमा इम गावे रे।

प्राणी.................. ॥ ११ ॥



३४. श्री नन्दीश्वर द्वीप स्तवन

[राग मांड—नाकोड़ा स्वामी....]

नन्दीश्वर वन्दो पाप निकन्दो, पाओ आनन्द आज।
ध्यान लगाओ प्रभु गुण गाओ, आया शुभ दिन आज ॥ स्थायी ॥

जम्बू द्वीप से गिनते होता, अष्टम द्वीप उदार।
वन उपवन नद नदियाँ जलाशय, शोभा अपरम्पार रे ॥ १ ॥

चार दिशाओं में शोभित जहाँ, अंजन गिरिवर चार।
लाख चौरासी योजन ऊँचे शिखर युक्त श्रीकार रे ॥ २ ॥

दस सहस्र योजन विष्कम्भ है, पृथ्वी पर सुखकार।
ऊपर सहस्र एक विस्तृत है, श्याम वर्ण मनोहार रे ॥ ३ ॥

अंजन गिरि की चार दिशा में, चौरस वापी चार।
प्रति वापी में एक एक है दधिमुख षोडश सार रे ॥ ४ ॥

चौसठ सहस्र योजन ऊँचे हैं, दश सहस्र विस्तार।
दधि सम उज्ज्वल धवल वर्ण गिरिवर हैं सुखकार रे ॥ ५ ॥

वावड़ियों की विदिशा में है रतिकर गिरि बत्तीस।
रक्त वर्ण के सब मिल होते, बावन गिरि जगदीश रे ॥ ६ ॥

दश सहस्र योजन ऊँचाई, दश योजन है व्यास।
झल्लरी सम आकार सुशोभित, स्पर्श करें आकाश रे ॥ ७ ॥

द्वासप्तति योजन ऊँचे सब, गिरिगण पर प्रासाद।
पंचाशत योजन विस्तृत है, होता नित वाद्य निनाद रे ॥ ८ ॥

प्रत्येक चैत्य में जिन प्रतिमायें धनुः शत पंच देहमान।
विविध रत्न निर्मित अंगादि, प्रत्यक्ष प्रभु के समान रे ॥ ९ ॥

प्रशान्त मुख मुद्रा तेजस्वी, पद्मासनस्थ जिनदेव।
विद्याधर जंघा चारण मुनि सुरवर करते सेव रे ॥ १० ॥

तीर्थंकरों के जन्मादि का जब, होता पुनीत प्रसंग।
अष्टाह्निका महोत्सव करते हैं, दर्षता भक्ति सुरंग रे ॥ ११ ॥

सपरिवार आते हैं गिरि पर, अर्चा करने सुरराज।
जलचन्दन पुष्प स्रग् धूप से, पूजते श्री जिनराज रे ॥ १२ ॥

वत्तीस प्रकार के नाटक करती, सुरबाला मिल साथ।
स्व देवत्व को सफल बनातीं, भेंट के त्रिभुवननाथ रे ॥ १३ ॥

भगवती पंचम अंग आगम में, चारण मुनि अधिकार।
नन्दीश्वर जा चैत्य वन्दन कर, धन माने अवतार रे ॥ १४ ॥

एक चैत्य में जिनविम्ब होते, इक शत औ चौवीस।
बावन के मिल सहस्रषट् और चतुः शत अड़तालीस रे ॥ १५ ॥

ऋषभानन चन्द्रानन जिनवर, वारिषेण वर्द्धमान।
तीन लोक शाश्वत चैत्यों में चौमुख के अभिधान रे ॥ १६ ॥

नन्दीश्वर पै प्रतिमाएँ करातीं, स्वरूप साक्षात्कार।
धन्य-धन्य जो दर्शन करते, भरते पुण्य भण्डार रे ॥ १७ ॥

कहाँ भरत यह, कहाँ नन्दीश्वर, आ न सकें स्वयमेव।
शक्तिहीन और लब्धि विहीन हम, नहीं विद्याधर देव रे ॥ १८ ॥

स्थापना नन्दीश्वर सम्मुख ही, दर्शन वन्दन आज।
पूजन से धन जीवन मानूं, देखके तीर्थाधिराज रे ॥ १९ ॥

पुण्योदय से स्वर्ण दिवस यह, आया भाग्य संयोग।
नन्दीश्वर गुण गाया भाव से, किया सुबुद्धि उपयोग रे ॥ २० ॥

ज्ञान ज्योति जागृत रहे अहो निशि, देखूं आत्म-स्वरूप।
कर्म अष्ट कर नष्ट शीघ्र ही "सज्जन" वने शिवभूप रे ॥ २१ ॥



३५. सामान्य स्तवन

(तर्ज—तेरे पूजन को भगवान्)

तेरे पूजन को भगवान्
वना है यह अद्भुत सामान ॥ टेर ॥

पद प्रक्षालन कारण तेरे, श्रद्धा जल भर नयन कटोरे
है प्रस्तुत मन यजमान, वना है.... ॥ १ ॥

शुद्ध भावना केशर घोली, कर में ले वर कनक कचोली,
पूजूं पद पद्म प्रधान, वना है.... ॥ २ ॥

भक्तिभावमय पुनीत शुद्धतम, पुष्प पात्र भी है यह अनुपम,
धरें प्रेम पुष्प अम्लान, वना है.... ॥ ३ ॥

ध्यान वह्नि अन्तर प्रकटाई, अष्ट कर्म की धूप जलाई,
करादो निज स्वरूप का भान, वना है.... ॥ ४ ॥

अनुभव ज्ञान की ज्योति जगाई, तव चरणों की लय है लगाई,
है दीपक यह असमान, बना है.... ॥ ५ ॥

सुव्रत अक्षत लेकर आई, मंगल अष्ट रचूं सुखदाई,
अमंगल हरदो हे गुण खान, बना है.... ॥ ६ ॥

साम्य भाव के भोज्य बने हैं, विश्व मैत्री के रस में सने हैं,
है मधुर सरस मिष्ठान, बना है.... ॥ ७ ॥

देश धर्म सेवा मय सुन्दर, फल भी है यह स्वामिन् ! रुचिकर,
लाई हूँ मैं दयानिधान, बना है.... ॥ ८ ॥

स्वीकृत करना पूजा मेरी, मैं हूँ चरण किंकरी तेरी,
और दे दो यह वरदान, बना है.... ॥ ९ ॥

आनन्द प्रद तव पद अनुरक्ति, जिन शासन की सेवा भक्ति,
गुणिजन के गुणों का गान, बना है.... ॥ १० ॥

ज्ञानोपयोग दो ऐसा स्वामी, "सज्जन" बने मुक्ति पथगामी,
है मम विनय यही भगवान्, बना है.... ॥ ११ ॥



॥ कथा गीत विभाग ॥

१. श्री अतिमुक्तकुमार की सज्झाय

(राग—धन्याश्री)

वन्दूं श्री अतिमुक्त कुमार ....वन्दूं
शैशव में संयम धर पाया, केवलज्ञान श्रीकार, वन्दूं ... ॥स्थायी॥

पोलाशपुर नृप विजय का प्यारा, श्री देवी माँ का राजदुलारा,
मृदुवपु रूप अम्बार, वन्दूं.... ॥१॥

शिशु मित्रों संग करता क्रीड़ा, गौतम मुनि लख आई व्रीड़ा,
तज के कन्दुक प्रहार, वन्दूं....॥२॥

पूछे आप कौन ? कहाँ जाते ? इस झोली में क्या हैं लाते ?
देखा है पहली वार, वन्दूं....॥३॥

गौतम मुनि कहे, आहार को जाता, शिशु झोली ग्रह भवन ले जाता,
रानी दे मोदक आहार, वन्दूं.... ॥४॥

गौतम प्रभु के पास सिधावे, अँगुली पकड़ अतिमुक्त भी जावे,
प्रभु को करे नमस्कार, वन्दूं.... ॥५॥

तद्भव सिद्धिक भव्य यह गौतम ! शिष्य तुम्हारा यह सर्वोत्तम,
है गुणगण भण्डार, वन्दूं.... ॥६॥

देखे तीर्थंकर शतशः मुनि जन, जग गये पूर्व संस्कार घन,
मैं भी वनूंगा अनगार, वन्दूं.... ॥७॥

माता पिता दें विवश हो आज्ञा, शिशु मुनि बन गये पाई प्रज्ञा,
पंच महाव्रत धार, वन्दूं— ।।८।।

मनिजन सह स्थण्डिल भू जावे, जल धारा लघु पात्र तिरावे,
मेरी नैया हो रही पार, वन्दूं— ।।९।।

शिशु मुनि को सब उपालम्भ देते, सचित्त जल मुनि स्पर्श न करते,
इसमें पाप अपार, वन्दूं—।।१०।।

मुनि परस्पर बातें करते, बाल्यावस्था में दीक्षित करते,
जाने न जीव विचार, वन्दूं— ।।११।।

करते इरियावही आलोचन, विकसित हो गये अन्तर्लोचन,
पाया, केवलज्ञान उदार, वन्दूं—।।१२।।

प्रभु कहे क्यों आशातना करते, निन्दा गर्हा भी क्यों करते,
इसको, हो गयी नैया पार, वन्दूं— ।।१३।।

षड्वर्षी शिशु केवल पाये, सब के मन में विस्मय आये,
प्रभु दें संशय निवार, वन्दूं— ।।१४।।

बाल केवली अतिमुक्त मुनिवर, कोटिशः वन्दन ज्ञान सुदिनकर,
'सज्जन' करे बारंबार, वन्दूं— ।।१५।।



२. तपस्वी धन्ना मुनिराज की सज्झाय

(राग काफी—ऐसे श्याम सलौने)

ऐसे धन्ना तपस्वी, मुनिगण में सिरदार।
प्रशंसा वीर प्रभु करे धन धन्ना अनगार— ।।स्थायी।।

काकन्दी नगरी अति सुन्दर, जितशत्रु थे नरेश।
भद्रा सार्थवाही श्रेष्ठिनी, विश्रुत देश विदेश, ऐसे— ।।१।।

एक मात्र सुत धन्य कुंवर था, विद्या रूप अम्बार।
अप्सरा जैसी आठ पत्नियाँ, शील विनय भण्डार, ऐसे-- ॥२॥

वर्द्धमान महावीर पधारे, देवे बधाई वनपाल।
राजा प्रजा मिल वन्दन जावे, सुने उपदेश रसाल, ऐसे— ॥३॥

धन्य सुने प्रभु की सुदेशना, जाने भोग असार।
नासिका मलवत् त्यागे तत्क्षण सर्व विरति ले धार, ऐसे— ॥४॥

छट्ठ छट्ठ की तपस्या करना, पारणे आयम्बिल आहार।
आजीवन यह अभिग्रह करते, धरते ध्यान उदार, ऐसे— ॥५॥

राजगृह गुणशील चैत्य में समवसरे वर्द्धमान।
पर्षद् द्वादशविध मिल आवे, वचनसुधा करे पान, ऐसे— ॥६॥

वन्दन कर श्रेणिक नृप पूछे, मुनिवर चवदह हजार।
सर्वश्रेष्ठ तपधारी कौन है ? कहे प्रभु धन्य अनगार, ऐसे— ॥७॥

अस्थिशेष तन गमन करे जब, खड़ खड़ ध्वनि विस्तार।
नव महीने कर घोर तपस्या, अनशन करे वैभार, ऐसे— ॥८॥

श्रेणिक जावे गिरि वैभार पै, मुनि को करे नमस्कार।
तप अनुमोदन भावना भावे, कहे धन्य अवतार, ऐसे— ॥९॥

अनुत्तर सर्वार्थसिद्ध विमाने, एकावतारी सुर सार।
धन्य बने सुख शय्यागत करे, द्रव्याणुयोग विचार, ऐसे—॥१०॥

आयु पूर्ण कर महाविदेह में संयम लेंगे धन्य।
केवल ज्ञान को पायेंगे 'सज्जन' वन्दे भाव अनन्य, ऐसे— ॥११॥



३. श्री आर्द्र कुमार की सज्झाय

ढाल १

(राग—मांड—नाकोड़ा स्वामी०)

जिन प्रतिमा दर्शन, सम्यग् दर्शन प्रकटावे जयकार, जिन—॥स्थायी॥

साम्प्रत अरब देश के तट पर, आर्द्रक देश उदार।
भारत के नृप बिम्बसार से, था मैत्री व्यवहार, जिन—॥१॥

एकदा मन्त्री भेट ले आये, आर्द्रक नृप दरबार।
आर्द्रकुमार कहे मित्रता करूँ मैं, कौन वहाँ राजकुमार, जिन—॥२॥

प्रतिनिधि वापिस आये मगध में, अभय से कहे समाचार।
आसन्न भव्य ही सख्य इच्छता, जिन बिम्ब भेजूँ उदार जिन—॥३॥

भेजी रजत पेटिका में प्रभु प्रतिमा, अद्भुत यह उपहार।
एकान्त देखे निर्निमेष दृग, जाग्रत हुये संस्कार, जिन—॥४॥

जाति स्मृति हुयी आर्द्र कुंवर को, हा! मैं था अनगार।
धिग् धिग् मानस विकृति कारण, अनार्य देश अवतार, जिन—॥५॥

गुप्त रूप से भारत जाऊँ! धरूं संयम सुखकार।
अंगरक्षक हैं वीर पंचशत, आँखों से वच हुआ पार, जिन—॥६॥

साधु वेश धर पंच महाव्रत, उचर रहे उस वार।
देववाणी करे शेष भोगावलि, विन भोगे न निस्तार, जिन—॥७॥

देवालय में करे कायोत्सर्ग, कन्या श्रीमती सार।
वर क्रीड़ा में वरे मुनिवर को धनवृष्टि हो श्रीकार, जिन—॥८॥

उपसर्ग जान चले झट वहाँ से, करते उग्र विहार।
दिग् भ्रम वश फिर 'सज्जन' आये, श्रीमती पाये भरतार, जिन—॥९॥

दोहा

पांव पकड़ कहे श्रीमती, मेरे पति हैं आप।
परिणय करो या शिर ग्रहो स्त्री हत्या महापाप॥ १॥

विवश मुनि रहे मौन में, परिणय कर गृहवास।
भोग्य निकाचित कर्म का, विन भोगे नहीं नाश ॥ २ ॥

ढाल—२

(तर्ज—महावीर स्वामीजी आप विराजो)

(गोपीचन्द लड़का——)

शुद्ध सम्यक्त्वधारी, संयम लेने की भावे भावना ॥ स्थायी ॥

कर्म निकाचित जान उदय में, भोगें निर्विकार।
संयमोपकरण सम्मुख नित देखे, कब त्यागूं गृह द्वार रे, शुद्ध— ॥ १ ॥

द्वादश वर्ष में पुत्र एक जब, हो गया मातृ आधार।
कहे पत्नी से रहो सुख से तुम, मैं लूं संयम भार रे, शु—॥ २ ॥

सून कातती चर्खा लेकर, पूछे पुत्र उस वार।
कहे श्रीमती पति रहित नारी का चर्खा मात्र आधार रे, शु—॥ ३ ॥
तेरे पिताजी साधु वनेंगे हम होंगे निराधार।
पुत्र कहे पग वाँधूं पिता के, मत करो सोच विचार रे, शु—॥ ४ ॥

कच्चे तन्तु से वाँधे पद-द्वय, सुत वात्सल्य मनधार।
द्वादश वर्ष रहे फिर घर में, वारह आँटे स्वीकार रे, शु—॥ ५ ॥

पुनः मुनिव्रत लेके स्वयं ही, कर दिया वहाँ से विहार।
चले राजगृह आर्द्र मुनीश्वर, भेटूं अभय कुमार रे, शु—॥ ६ ॥

पथ में पंचशत अंगरक्षक भी, प्रतिबोधे देशना सार।
नियतिवादी परिव्राजक वोधे, गज तापस परिवार रे, शु—॥ ७ ॥

वद्ध श्रृंखला गजवर चिन्ते, कैसे करूं नमस्कार।
लोह श्रृंखला तत्क्षण टूटी, गज नमे शुण्ड प्रसार रे, शु—॥ ८ ॥

जय २ ध्वनि से गगन गुञ्जरित, तप की महिमा अपार।
गुणशिलवन समवसरणे वन्दे, तीर्थंपति गणधार रे, शु—॥९॥

प्रभु से सुन वन्दन को आये श्रेणिक अभय कुमार।
गज मुक्ति का आश्चर्य करते, वन्दे आर्द्रकुमार रे, शु—॥१०॥

आर्द्र मुनि कहे नहीं कठिन यह, कठिन सूत के तार।
बारह वर्ष तक तोड़ सका नहीं, धिग् २ मोह संसार रे, शु—॥११॥

धन धन अभय गुरु तुम मेरे, किया अनुपम उपकार।
श्री जिन बिम्ब भेजकर तुमने, किया मेरा उद्धार रे, शु—॥१२॥

उग्र तप संयम से क्षय किये, घनघाती कर्मचार।
सर्वज्ञ सर्वदर्शी बन विचरे, तारे कई नरनार रे, शु—॥१३॥

आयु पूर्ण कर मुक्ति धाम में सादि अनन्त भंग धार।
सिद्ध शिला पर सिद्ध विराजे, नहीं पुनः अवतार रे, शु—॥१४॥

पूरण पुण्योदय हो जिसका, स्वर्णज्ञान मय सार।
जिन प्रतिमा दर्शन से विचक्षण सज्जन भव निस्तार रे, शु—॥१५॥



४. जम्बूकुमार की सज्झाय

(तर्ज—भिक्षा दे दे मैया पिंगला)

आज्ञा दे दे माता धारिणी, विनति ले यह मान। माता धारिणी—
तू मेरे नयनों का तारा, तू है जीवन प्राण, जम्बू लाड़ला— ॥

कौन है माता कौन पुत्र है, झूँठा नाता जान।
माता धारिणी—— ॥ १ ॥

कमल सी कोमल तेरी काया, तप असिधार समान।
जम्बू लाड़ला—— ॥ २ ॥

कायर नर डरते कष्टों से, नहीं डरते बलवान।
माता धारिणी—— ॥ ३ ॥
सोलह वर्ष की किशोर वय है, तू है अभी नादान।
जम्बू लाड़ला—— ॥ ४ ॥
नहीं बालक नहीं वृद्ध युवा, है आत्मा सदैव समान।
माता धारिणी—— ॥ ५ ॥
आत्मतत्त्व को पण्डित जाने, तू बालक अनजान।
जम्बू लाड़ला—— ॥ ६ ॥
सुधर्म प्रभु का प्रवचन सुनकर आत्मतत्त्व लिया जान।
माता धारिणी—— ॥ ७ ॥
सुख सम्पति समृद्धि भोगो, देवो सुपात्र में दान।
जम्बू लाड़ला—— ॥ ८ ॥
भोग भयंकर भुजंग सम है, योग सुधा करूं पान।
माता धारिणी—— ॥ ९ ॥
अपसरा सी कमनीय कामिनियाँ, हैं गुण शील निधान।
जम्बू लाड़ला—— ॥ १० ॥
सुन्दरियाँ ये निरय दूतिका, सेवे कौन सुजान।
माता धारिणी—— ॥ ११ ॥
संयम लूंगा माता मैं तो, सब धर्मों में प्रधान।
माता धारिणी—— ॥ १२ ॥
हम सब भी फिर संग चलेंगे, है यही विधि का विधान।
जम्बू लाड़ला—— ॥ १३ ॥
उत्तम जन आचरित पंथ के, पथिक हुए पुण्यवान।
जम्बू केवली—— ॥ १४ ॥
अभिनन्दन नित "सज्जन" करते पाये पद निर्वाण।
जम्बू केवली—— ॥ १५ ॥



५. श्री स्थूलिभद्र की सज्झाय

(तर्ज—भजो सब सार मंत्र नवकार)

नमो नित स्थूलिभद्र मुनिराज, जो थे मुनिगण के शिरताज ॥स्थायी॥

मन्त्रिपुत्र थे, पाटलीपुत्र में, स्थूलिभद्र महाभाग।
बारह वर्ष रहे रूप कोशा घर, था ऐसा अनुराग, नमो—॥१॥

कूटनीति वश पूज्य पिता का, स्वसुत से अवसान।
हो गया तब नृप राज्य सभा में, बुलवावें दें सम्मान, नमो—॥२॥

हो शकटार के बड़े पुत्र तुम, मन्त्रिपद करो स्वीकार।
राजन्! समय दो मुहूर्त्त मात्र का, करलूं सोच विचार, नमो—॥३॥

उपवन में जा चिन्तन करते, जाने सब ही असार।
वैराग्य भाव दृढ़ धार हृदय में, नृप से कहे सुविचार, नमो—॥४॥

मुझे जाना है संयम पथ पर क्षमा करें महाराज।
सम्भूतिविजय से मुनि दीक्षा ले, साधे स्व पर काज, नमो—॥५॥

वर्षावास रहे कोशा भवन में, उसको दे प्रतिबोध।
स्वाध्याय ध्यान में लीन रहते, विषय विकार निरोध, नमो—॥६॥

पावसऋतु और पूर्व प्रेमिका, करते सरस आहार।
नृत्यगान हाव-भाव देख सुन, रोम में नहीं है विकार, नमो—॥७॥

चार मुनि गये चार स्थान पर, करने वर्षावास।
सिंह गुफा विषधर बाँबी पर, कूप कण्ठ वेश्यावास, नमो—॥८॥

तीन आये दुष्करकारी कह, गुरु करते सम्मान।
स्थूलिभद्र का दुष्कर दुष्कर कह, करते अभ्युत्थान, नमो—॥९॥

भद्रबाहु से चवदह पूर्व को, पढ़ बनते आचार्य।
वीर प्रभु से नवम पट्ट पर, बैठे स्थूलिभद्र आर्य, नमो—॥१०॥

चौरासी चौवीसी पर्यन्त, स्थूलिभद्र का नाम।
स्मरण करेंगे भव्य भाव से, थे ब्रह्मचारी ललाम, नमो—॥११॥

सामायिक पारण के पाठ में, स्थूलिभद्रादि चार।
गृहत्याग को सफल बनाया, "सज्जन"करे नमस्कार, नमो—॥१२॥



६. पूणिया श्रावक की सज्झाय

(राग – गोपीचंद लड़का)

धन्य पूणिया श्रावक, जिसकी सामायिक अनमोल थी—॥स्थायी॥

राजगृह में पूणिया श्रावक, शुद्ध सामायिक करता।
पूणी का व्यापार था उसका, द्वादशव्रत आचरता रे, धन्य—॥१॥

धर्म नीति से रहते दम्पति, स्वधर्मिवात्सल्य करते।
एक-एक दिन तपस्या करके, राशि पुण्य की भरते रे, धन्य—॥२॥

प्रभु मुख श्रवण करे श्रेणिक नृप, होगा नरक में जाना।
पूछे प्रभु से नरक न जाऊँ, ऐसा यत्न बताना रे, धन्य—॥३॥

वीर प्रभु कहे नरक न जाओ, इसके चार उपाय।
कभी न जाओ भद्र ! नरक में, यदि एक बन जाय रे, धन्य—॥४॥

नित्य करो नवकारसी रे, कपिला देवे दान।
पूणिया एक सामायिक फल दे,
तजे कालिया हिंसा विधान रे धन्य—॥५॥

नवकारसी नहीं होती भगवन् ! उठते करूं जलपान।
कपिला तो है दासी मेरी, क्यों नहीं देगी दान रे, धन्य—॥६॥

पूणिया से सामायिक लेना, नहीं कठिन कुछ काम।
कालिया को बन्दी कर भेजूं, पाताल कूप के धाम रे, धन्य—॥७॥

बल पूर्वक कपिला से याचक, दिलवावे जब दान।
कहे दासी देती है कुड़छी, मैं नहीं देती दान रे, धन्य—॥८॥

पूणिया गृह नृपति जावे, माँगे सामायिक एक।
कोटि कनक मुद्राएँ लेलो, और दूँ ग्राम अनेक रे, धन्य—॥९॥

पूणिया कहे स्वामिन्! सामायिक, विकती नहीं यह नीति।
करो एक मुहूर्त सामायिक, यही पाने की रीति रे, धन्य—॥१०॥

कालिया कहता प्रण है पक्का, कैसे रहता अधूरा।
आर्द्र मिट्टी के महिष बनाकर, मैंने प्रण किया पूरा रे, धन्य—॥११॥

सुन भय भ्रान्त हो श्रेणिक नृपति, समवसरण में आवे।
प्रभुवर कहे मुझ सदृश पदवी, होगी क्यों घबरावे रे, धन्य—॥१२॥

धन्य धन्य वह पूणिया श्रावक, धन्य श्रेणिक नरराय।
भावीजिन श्रेणिक है, 'सज्जन', ज्ञान से गुणिगुण गाय रे, धन्य—॥१३॥



७. श्रेष्ठी धन्ना—शालिभद्र धन्य—सुभद्रा संवाद

(तर्ज—यशोमती मैया से)

सुभद्रा से पूछे धन्ना, कहो मेरी रानी ?
आज क्यों आया आँखों से पानी—॥स्थायी॥

राजगृह नगरी के मान्य धनी मानी,
नृप के अंक में जिन की, काया कुम्हलानी,
शालिभद्र सा तेरा ओ""शालिभद्र सा, तेरा भ्राता है रानी,
नहीं दूजा सानी, सुभद्रा—॥१॥

मेरे हृदय की तुम हो, प्रिय साम्राज्ञी,
आठों में हो, तुम महाराज्ञी,
क्या दुःख है तुम्हें ओ""क्या कहो महारानी ?
बोलो जवानी, सुभद्रा—॥२॥

स्वामिन् ! भ्राता मेरा, बना है विरागी,
हो जायेगा वह, शीघ्र सर्वत्यागी,
इक इक नित्य त्यागे ओ""इक० इक इक रानी,
नहीं बात छानी, सुभद्रा—॥३॥
मात्र एकाकी प्रिय, भाई है मेरा,
पितृ गृह में होगा, घोर अंधेरा,
इसी दुख से स्वामी मेरे ओ....इसी० नयनों से पानी,
बात जानी मानी, सुभद्रा—॥४॥
धन्ना सेठ कहे, कायर तेरा भाई,
इक इक क्या तजे, समझ न आई,
कैसा वैराग्य उसका ओ""कैसा० दिखता अज्ञानी,
रीति न जानी, सुभद्रा— ॥५॥
सरल है स्वामी जग में, मुख की यह कथनी,
किन्तु कठिन है करना, वैसी ही करनी,
बोले धन्य लो देखो ओ....बोले० चला मैं भी रानी,
सुनलो सयानी, सुभद्रा— ॥६॥
शालिभद्र के आँगन, कुंवर धन्य आये,
आओ झट प्रिय बन्धु, प्रभु पास जायें,
आत्म कार्य में सखे ! ओ""आ० देर न लगानी,
यही वीर वानी, सुभद्रा— ॥७॥
शालिभद्र उतरे झट, अपने भवन से,
तोड़ दिया नाता, धन व स्वजन से,
महावीर प्रभु की ओ.... महा० शरण है सुहानी,
वैभव है फानी, सुभद्रा— ॥८॥
साला बहनोई लेते प्रभुजी से दीक्षा,
ग्रहणी आसेवनी लेकर के शिक्षा,
वैभार गिरि पै चढ़ के ओ""वैभार० अनशन ले ज्ञानी,
'सज्जन' की वानी, सुभद्रा— ॥९॥

८. ब्राह्मी सुन्दरी की सज्झाय

(राग—काफी—साँवरो सुखदायी०)

ब्राह्मी सुन्दरी कुमारी प्रथम महासतियाँ हमारी—॥स्थायी॥

प्रथम तीर्थंकर ऋषभ प्रभु की, कन्याएँ सुकुमारी।
प्रभु ने ब्राह्मी को शिक्षा दो, शब्द शास्त्र हितकारी॥
वताया विविध प्रकारी, ब्रा—॥१॥

ब्राह्मी आदि अष्टादश लिपियाँ, और कलाएँ सारी।
सुन्दरी अंकगणित शिक्षा ले, ज्ञान विज्ञान विस्तारो॥
विदुषी पहली दो नारी ब्रा—॥२॥

ऋषभ देव प्रभु प्रथम तीर्थंकर, तीर्थ चतुर्विध कारी।
भरतपुत्र श्री वृषभसेन वने, प्रभु के प्रथम गणधारी।
पुरुष पुण्डरीक वे भारी, ब्रा—॥३॥

ब्राह्मी प्रथम महाश्रमणी प्रभु की तीन लक्ष शिष्या सारी।
पंच महाव्रत पाँच समितियाँ, गुप्ति तीन सुखकारी॥
संयम तप शील की धारी, ब्रा—॥४॥

भरत ने स्नेहवश सुन्दरी रोकी, रह गयी विनय विचारी।
साठ सहस्र वर्ष आयंबिल करके कृश तनु तेजस्विनी नारी॥
किया वैराग्य साकारी, ब्रा—॥५॥

विजय ध्वजा फहरा षट् खण्ड में, आये भरत चक्रधारी।
अस्थिपंजर मात्र देखी सुन्दरी, मन में दुःख अपारी॥
क्षमा करो भूल हमारी, ब्रा—॥६॥

दीक्षा ले श्रमणी वने सुन्दरी, सतरह विध संयमधारी।
वन में जा वाहुवलि प्रतिवोधे, मद गज करते सवारी॥
वने सर्वज्ञ मद मारी, ब्रा—॥७॥

धन्य धन्य वे ब्राह्मी सुन्दरी, जग में ज्योति प्रसारी।
प्रातः जपते नाम जैन जन, ऋद्धि सिद्धि मंगलकारी ॥
अमंगल दूर निवारी, ब्रा— ॥८॥

मुक्तिगामिनी बनी वे सतियाँ नमते नित नरनारी।
ज्ञान ज्योति में स्वरूप यह अपना, 'सज्जन' लेते निहारी ॥
गावे गुण गण मनोहारी, ब्रा—॥९॥



९. प्रभञ्जना की सज्झाय

दोहा

श्री वर्द्धमान जिनेन्द्र के पद-कज में प्रणिपात।
करके वरणूं त्याग की, विस्मयकारी बात ॥१॥
आर्य देश के मनुज थे, आर्य आचरणवान्।
अवसर निष्फल नहीं करे, साधे सिद्धि विधान ॥२॥

ढाल—१

(राग—सोरठ गुरु तेरो अंबिका)

गाऊँ, गुणि जन गुण जयकारी,
जिससे जागृत हो शक्ति सारी रे ॥ स्थायी ॥

वैताढ्यगिरि पर शोभित सुन्दर, नाम चक्रांका नगरी।
सिद्धि समृद्धि विद्याओं की, मानो छलकती गगरी रे, गाऊँ—॥१॥
चक्रायुध नृप शासन करते, धर्मज्ञ नीति विचारी।
मदनलता महाराज्ञी गुणवती, रूपशीलादि सुखकारी रे, गाऊँ —॥२॥
महामहिषी मानस सर-कुक्षि से, उत्पन्न राजमराली।
रूप निरख रति अधोमुख होती, बुद्धि कला गुणशाली रे, गा०— ॥३॥

दक्षिणार्द्ध भरत के मध्य खण्ड में, राधावेध विधान।
हो रहा सुनकर भेजे प्रभञ्जना, चाली चढ़ वायुयान रे, गाऊँ—॥४॥

मध्य खण्ड में उतरे प्रभञ्जना, सहस्र कन्या मिल सारी।
नभचर भूचर नृप कन्याएँ राधावेध प्रणधारी रे, गाऊँ—॥५॥

मार्ग मध्य उपवन में देखे, श्रमणी संघ विराजे।
कर्त्तव्य जान के शीघ्र ही सारी, आई वन्दन काजे रे, गाऊँ—॥६॥

गुरुवर्या कहे अति उमंग से, कहो ? कहाँ तुम जाती।
राधावेध प्रणधारिणी हम सब, वर वरने को जाती रे, गाऊँ—॥७॥

प्रभञ्जना कहे पूज्य विनय ही, अभिजात कुल रीति।
ज्ञान की बात सुने क्षण भर तो,
यह 'सज्जन' गण नीति रे, गाऊँ— ॥८॥

॥ दोहा ॥

आर्या मुख्या बुद्धिमती, सुप्रतिष्ठिता शुभनाम।
धर्म लाभ कह स्नेह से, अहो ! मोह दुःख धाम ॥१॥

ढाल २

(राग—आशावरी)

सुभगे ! सोच समझ कर करना, कुछ ज्ञान हृदय में धरना, सु—॥१॥

वीतराग तीर्थंकर कहते, विषय भोग विष जानो।
आर्या शिरोमणि कहे संसार का, मूल अब्रह्म ही मानो, सु—॥२॥

मानव भव मिलना दुर्लभ है, अति दुर्लभ जिनधर्म।
पुण्यानुबन्धी पुण्य से पाये, साधो तुम शिव शर्म, सु—॥३॥

बुद्धिमान जन तत्त्व विचारे, मूढ़ भेड़गत्ति चाले।
प्रज्ञावती तुम समझ करो सब, बिन समझे किया साले, सु—॥४॥

प्रभञ्जना कहे—पूज्यवर्ये ! आप सत्य फरमातीं।
आत्म कार्य भी करना है पर, अभी तो हम सब जातीं, सु—॥५॥

एक सखी कहे महाश्रमणी की, बात सत्य हम रागी।
भुक्त भोगिनी बनकर स्वामिनि ! फिर हम होंगी त्यागी, सु—॥६॥

चिन्तन करके प्रभन्जना बोली—प्रथम आत्म हित कीजे।
पुण्य प्रभाव संयोग मिला यह, ज्ञान 'सज्जन' से लीजे, सु—॥७॥

॥ दोहा ॥

महाश्रमणी सुप्रतिष्ठिता, देवे तव उपदेश।
सुमते ! कन्याओ सुनो, वीतराग सन्देश ॥१॥

जीव अनादि काल से मिथ्यात्व अविद्या योग।
चतुर्गति में भ्रमण करे, विषय कषाय संयोग ॥२॥

ढाल ३

(तर्ज—जरा सामने तो आओ छलिये)

जरा सोचो विचारो बहिनों ! इस जग में सभी तो आसार है।
इक सार तत्त्व है आतमा, जो अनन्त गुण भण्डार है ॥स्थायी॥

मिथ्यात्व कषाय प्रमाद में फँसके, अनादिकाल से भटका।
पुण्य योग मानव भव पाके विषय भोग में अटका।
जाता मानव जन्म वह हार है, धरे शिर पै कर्मों का भार है,
इक—॥१॥

मोह की मदिरा पीकर भूला, अपने रूप का भान।
जागो ! अन्तर आँखें खोलो, हुआ निशा अवसान॥
आत्म शुद्धि का अवसर आज है, सुनो ! आत्मा की यह आवाज है,
इक—॥२॥

अनन्त काल से सव जीवों सह, किये अनेक सम्बन्ध।
इच्छाएँ नहीं पूरी होतीं कर्मों का होता है बन्ध॥
विषय भोग दुःखों के आगार हैं, आत्म ज्ञान ही सज्जन सार है,
इक—॥३॥

॥ दोहा ॥

राजकुमारी प्रभञ्जना सुन आर्या की वात।
सोचे अनादि से कर्म ही, करे आत्मगुण घात॥१॥

पर भावों में रमणता, है अनादि कालीन।
कैसे त्यागे जीव यह, पूर्व कर्म आधीन॥२॥

अतः प्रथम परिणय करें, भोग में है अनुराग।
है करना हमको सही, भुक्त भोगी बन त्याग॥३॥

श्रमणी कहे मलीन कर, फिर धोना अज्ञान।
उज्ज्वल करे मलीन को, सो ही बुद्धिमान॥४॥

ढाल ४

(राग काफी तर्ज—ऐसे श्याम)

प्रभञ्जना, चिन्तन करती, क्या है ? आत्म स्वभाव ॥स्थायी॥

ज्ञान दर्शनादि की सत्ता, ये ही आत्म-स्वरूप।
कर्म संयोग से अज्ञानी वन, भूल गया निज रूप, प्र—॥१॥

जन्म मरण करते आत्मा ने, किये सम्बन्ध अनन्त।
माता मर पत्नी वन जाती, पिता पुत्र वने हन्त, प्र—॥२॥

शत्रु मित्र वनते मित्र शत्रु, स्व स्व कर्मानुसार।
दुःख सुख भोगे भ्रमत चतुर्गति, हा धिग् धिग् संसार, प्र—॥३॥

सत्ता रूप से सब जीवों का, एक ही चेतन स्वभाव।
मेरा तेरा कर्म संग वश, सब आरोपित भाव, प्र—॥४॥

आत्मा के योग्य हैं निजगुण, भूल है पुद्गल भोग।
करते बंधता भव में भटकता, फिर-फिर कर्म संयोग, प्र—॥५॥

महाश्रमणी सम्मुख असत्य यह, कहना है महापाप।
स्वपर रूप विवेचन करके, जानूं अपने आप, प्र—॥६॥

प्रभञ्जना चिन्तन करे रे, आतमा शाश्वत तत्त्व।
पुद्गल क्षणिक और नाशवान् हैं, पृथक करूँ धर सत्व, प्र—॥७॥

आत्मा सत्चिद् आनन्दमय है, पुद्गल जड़ स्वभाव।
पुद्गल पर है नहीं आत्मा के, हैं सबही पर भाव, प्र—॥८॥

हुआ भेद विज्ञान मुझे अब, करना जड़ का नाश।
जीवकर्म का पृथक्करण कर, करूँ स्वगुण का विकास,
प्र—॥९॥

अहो! पुण्यानुबन्धी पुण्य से, मिला सद्गुरु संयोग।
ज्ञान की ज्योति जगी सज्जन मन, करूँ स्वगुण उपभोग,
प्र—॥१०॥

॥ दोहा ॥

हुई ध्यानस्थ प्रभञ्जना, करे स्वरूप का ध्यान।
मन वच तन एकाग्रता, विरति अप्रमत्त स्थान ॥१॥

स्वपर रूप सत्तादि का, करते ऊहापोह।
अपूर्वकरण गुणस्थान में, क्षपकश्रेणी आरोह ॥२॥

ढाल ५

(राग—देश जग का झूठा है सब नाता)

अनुभव आत्मा रूप का आया, पर भाव को दूर भगाया रे—॥स्थायी॥

आत्म गुण पर्याय रमण कर, पर परिणति पर जानी।
आत्म प्रदेश गत कर्म वर्गणा, करे नष्ट वन ज्ञानी रे, अ— ॥१॥

मोहकर्म के दुर्द्धर्ष योद्धा, अनन्तानुवन्धी कषाया।
दर्शनमोह को जड़ से क्षय कर, क्षायिक सम्यक्त्व पाया रे, अ— ॥२॥
तिर्यग् गति के हेतु कषाय जो, द्वि त्रिचतुष्क खपाया।
वेदत्रय क्षय करे साथ ही, हास्यादि षट्क हटाया रे, अ— ॥३॥
होके अवेदी संज्वलन नष्ट करे, मोह का पूर्ण विनाश।
क्षायिक संयम भाव प्रकट कर, एकत्व वितर्क प्रकाश रे, अ— ॥४॥
घनघातित्रिक नष्ट किये जव, हो गया केवलज्ञान।
केवलदर्शन एक समय में, हो गयी वह भगवान रे, अ— ॥५॥
वनी सयोगी केवली कन्या, लोकालोक विलोके।
कालत्रय की त्रिविध वर्त्तना, एक समय आलोके रे, अ— ॥६॥
देव दुन्दुभिनाद गगन में, स्तवे सुरासुर वृन्द।
श्रमणीगण करे वन्दना विधिसह हुआ मंगल आनन्द रे, अ— ॥७॥
सहस्र कन्याएँ सर्वविरति धर तप जप ज्ञान समृद्ध।
भूमण्डल विचरे प्रतिबोधे, होवे अन्त में सिद्ध रे, अ— ॥८॥
कारण योगे कार्य सिद्धि हो, न्यायशास्त्र यों गावे।
बुद्धिमान वही कारण पाकर, स्वहित सिद्धि कर पावे, अ— ॥९॥
वसुदेव हिण्डी में कथा यह उत्तम अद्भुत आश्चर्यकारी।
वर वरने जाती कन्याएँ, वनी संयम-तपधारी, अ—॥१०॥
श्रीमद् देवचन्द्र गणिवर की, कृतियाँ तत्त्व मय सारी।
आत्माभिमुख करने वाली, समझे सम्यक्त्वधारी, अ—॥११॥

कलश

सुविहित सुन्दर गच्छ खरतर, संविग्न शाखा श्रुतधरा,
सुख सिन्धु गुरु समुदाय की यह प्रवर पाट परम्परा।
हरि सूरि आनन्द कवीन्द्र कान्ति जिन उदयसूरि गुरुवरा,
सज्ज्ञान कृपया करी 'सज्जन' गीतिकाएँ शुभंकरा ॥ १ ॥



१०. महासती सीता की सज्झाय

(तर्ज—बोल २ आदीश्वर व्हाला)

सुनलो सुनलो रे, थे सती सीता की बात या साँची रे,
शील से राची रे ।। स्थायी ।।

मिथिला की थी राजकुमारी, दाशरथि को विवाही रे ।
सतियाँ होती आर्यनारियाँ, पतिव्रता सदा ही रे, शील-- ।। १ ।।

राज्याभिषेक रह गया राम का, कैकेयी हठ वश भाई रे ।
वर्ष चतुर्दश वन में रहना, पित्राज्ञा सुनाई रे, शील— ।। २ ।।

भ्रातृ भक्त लक्ष्मण थे संग में, सती सीता सन्नारी रे ।
वना त्रिवेणी संगम अनुपम, पावनकारी रे, शील——— ।। ३ ।।

पति संग वन प्रवास करने, सीता वन में जाती रे ।
पति पद का अनुसरण करे वह, सती कहलाती रे, शील— ।। ४ ।।

वन वन विचरण करती सहती, कष्ट अनेकों भारी रे ।
वर्ष त्रयोदश बीत गये यों, सुनो नर नारी रे, शील—।। ५ ।।

वर्ष चौदहवें में तीनों ही, पंचवटी में आवे रे ।
संन्यासी वन रावण सीता, हर ले जावे रे, शील—।। ६ ।।

अशोक वाटिका में सीता जी, तरु तल बैठी रहती रे ।
प्रतिहारिणी राक्षसियाँ वहाँ, पहरा देतीं रे, शील—।। ७ ।।

रावण आता विनती करता, पटरानी वन जाओ रे ।
वनवासी में संग भटकती, क्यों दुःख पाओ रे, शील—।। ८ ।।

सती देखे नहीं रावण सम्मुख, रखती नीची दृष्टि रे ।
सर्व विश्व में सतियों की यों, होती सृष्टि रे, शील—।। ९ ।।

हरण किया था सीता का पर, वलात्कार का त्यागी रे ।
रावण भी भावी तीर्थंकर, है वड़भागी रे, शील—।।१०।।

सती महिला के मनमन्दिर में, पर-नर को नहीं स्थान रे
शील रत्न की रक्षा करने, देवी तजती प्राण रे, शील—॥११॥

राम रावण का युद्ध हुआ तब रावण मृत्यु पाया रे।
सीता को ले रामचन्द्र जी, अयोध्या आया रे, शील—॥१२॥

अग्नि परीक्षा हुई सीता की, अग्नि कुण्ड वना सरवर रे।
स्वर्ण सिंहासन बैठी सीता, नमते सुरवर रे, शील—॥१३॥

जय जयकार सती का बोले, सब ही शीश झुकावे रे।
धन धन सीता सती शिरोमणि, जग यश गावे रे, शील—॥१४॥

सीता राम का नाम सर्वदा, जपते भारतवासी रे।
देखो सीता का पद पहले, गौरव प्रकाशी रे, शील—॥१५॥

सतियों से नारी जाति की, गरिमा जग में छायी रे।
ज्ञान ज्योति में 'सज्जन' ने यह महिमा गायी रे, शील—॥१६॥

—□—

११. सती अञ्जना की सज्झाय

दोहा

शासनपति श्री वीर जिन, श्री गौतम गणधार।
पदपंकज में नमन कर, वागदेवी स्मरी सार ॥१॥
महीयसी महिला सती-शिरोमणि स्त्री रत्न।
अञ्जना है मनरञ्जना, गाऊँ करके प्रयत्न ॥२॥

ढाल—१

(तर्ज—पार्श्व प्रभु शंखेश्वरा शंखेश्वरा)

धन्य धन्य सती अञ्जना, सत्त्वशालिनी नारी रे।
हनुमत से वलवान् की जननी, जाने दुनियां सारी रे ॥स्थायी॥

वसुन्धरा यह भारतवर्ष की, आर्यभूमि कहलाती रे।
स्थावर जङ्गम रत्न प्रसविनी, श्रुतियाँ महिमा गाती रे ॥ १ ॥

महेन्द्रपुर साक्षात् भूमि पर, स्वर्ग से अवतर आया रे।
महेन्द्रनृपति की सकल प्रजा पर, थी सुखप्रद सच्छाया रे ॥ २ ॥

शीलधारिणी धारिणी राणी, शची देख शरमाती रे।
रत्नकुक्षि सर राजमराली, अञ्जना सब मन भाती रे ॥३॥

षोडशी लख चिन्तित हो दम्पति, वर की खोज कराते रे।
प्रह्लाद नृपति के सुत पवनञ्जय से सम्बन्ध बँधाते रे ॥ ४ ॥

वैताढ्यगिरि के आदित्यपुर से, विमान से अति निर्भय रे।
आये प्रिया निरीक्षण करने, प्रहस्तसह पवनञ्जय रे ॥ ५ ॥

अञ्जना सखियों को संग ले, उपवन क्रीड़ा करती रे।
हो श्रमक्लान्त शिला पर बैठीं, वर के चित्र निरखती रे ॥ ६ ॥

विद्युत्प्रभ और पवन विषय में, सखियों से सुन जाना रे।
विद्युत्प्रभ तो शीघ्र प्रव्रज्या लेके मुक्तिपद पाना रे ॥ ७ ॥

सुनकर नमन किया अञ्जना ने देख कुपित पवनञ्जय रे।
उन्मन हो लौटे तत्क्षण ही, पूछे प्रहस्त सविनय रे ॥ ८ ॥

मौन धारली राजपुत्र ने, भाविभाव कुछ अन्य रे।
पित्राज्ञा से परिणय करके, निज को माना अधन्य रे ॥ ९ ॥

अन्य पुरुष प्रेमिणी पत्नी का मुखावलोकन पाप रे।
पति वियोग में दुःखी अञ्जना, सती करे सन्ताप रे ॥ १० ॥

बसन्तमाला बाल सहेली, भाँति भाँति समझावे रे।
दुःख धरती तरुणी बाला को, सखियाँ धैर्य बँधावे रे ॥ ११ ॥

द्वादश वर्ष विरह काल यों, बिन 'सज्जन' के बीता रे।
लङ्कापति रावण आमन्त्रण, आया तब अनचीता रे ॥ १२ ॥

॥ दोहा ॥

प्रह्लाद नृप प्रस्तुत हुये, करने शीघ्र प्रयाण।
पवनञ्जय उन्हें रोककर, स्वयं चले धर्म प्राण ॥ १ ॥

ढाल—२

(तर्ज—गोपीचन्द लड़का)

धन्य सती नारियाँ शील को पाले शुद्ध भाव से ।।स्थायी।।

मङ्गल आरती करने द्वार पर, पति मुख दर्शन प्यासी ।
वसन्तमाला सखी संगले, खड़ी रूप गुण राशी रे, ध— ।।१।।

देख पवन जी क्रुद्ध हो गये, करके पाद प्रहार ।
मूर्च्छित सती की ओर न देखा, रथ पर हुए सवार रे, ध— ।।२।।

प्रथम प्रवास किया सरवर तट, तरु तल निशा निवास ।
चक्रवाक युग विरहाकुल लख, लेते दीर्घ निःश्वास रे, ध— ।।३।।

पूछे मित्र तव कहे, अञ्जना यों ही विरह विलाप ।
करती होगी, हा ! हा ! मैंने, व्यर्थ किया महापाप रे, ध— ।।४।।

कहे मित्र पतिव्रता सती का, निरपराध किया त्याग ।
रण में जाना उचित नहीं है, लौट चलो महाभाग रे, ध— ।।५।।

आये गुप्त रीति से निज गृह, सती से माफी माँगी ।
पत्नी संग में चार घड़ी रह, मुद्रिका दे वड़भागी रे, ध— ।।६।।

रणहित शीघ्र गये लंका में विजय ध्वजा फहरायी ।
इधर अञ्जना गर्भवती थी, विपत्ति सती पर आयी रे, ध— ।।७।।

सास-श्वसुर ने कुलटा कुसति कह, राज भवन से निकाला ।
पितृ गृह में मिला न आश्रय, वन का मार्ग सँभाला रे, ध— ।।८।।

श्वापद जन्तु काँटे भाटे, महा भयंकर वन में ।
भूखी-प्यासी दोनों सखियाँ, महामन्त्र जपे मन में रे, ध— ।।९।।

ध्यान मग्न मुनिराज के दर्शन करके प्रणति विनय से ।
पूछे निज संकट का कारण, मुनि कहे पाप उदय से रे, ध— ।।१०।।

पूर्व भवे असूया से सौत की, प्रभु प्रतिमा को छिपाया।
द्वाविंशति घटि दुःख देकर के कर्म निकाचित उपाया रे, ध— ॥११॥

विरह रहेगा इतने समय तक, फिर पतिदेव मिलेंगे।
पुत्र पत्नी का स्वागत होगा, पुण्य के पुष्प खिलेंगे रे, ध— ॥१२॥

एक गुफा में आश्रय लेकर, वृत्ति वनफल मात्र।
वस्त्र फट गये अंग छिल गये, मुझयि कोमल गात्र रे, ध— ॥१३॥

गर्भ काल पूरण होने पर, प्रसव किया सुत रत्न।
प्रसूति कर्म करे वसन्तमाला, पाले शिशु सयत्न रे, ध— ॥१४॥

पुण्य उदय होता जब अपना, संकट सब मिट जाते।
दुर्जन भी 'सज्जन' हो जाते, शूल फूल बन जाते रे, ध— ॥१५॥

दोहा

सती के पुण्य प्रताप से, पुत्र महा पुण्यवान्।
विद्याधर प्रतिसूर्य का, स्तम्भित हुआ विमान ॥१॥

ढाल—३

(तर्ज—राग आसावरी)

जग में धन्य धन्य सती नारी, शील की महिमा है भारी,
जग में धन्य शीलवती नारी ॥स्थायी॥

नृप खगपति निज वायुयान से, नीचे दृष्टि लगाये,
दीन दुःखी निर्बल नारी द्वय, शिशु लख दृग भर आये रे ॥१॥

विद्याधर ने निज वाहन को, शीघ्र गगन से उतारा,
धर्मभगिनी कह परिचय पूछा, जाना तो हर्ष अपारा रे ॥२॥

भगिनी बैठिये विमान में झट, धर्म भ्राता मुझे जान,
सती पुत्र और सखी संग ले तत्क्षण चढ़ी विमान रे ।।३।।

प्रतिसूर्य ले चला सभी को, हर्षित मन निज घर पै,
चंचल बालक अंक से उछला, गिर गया गिरि शिखर पै रे ।।४।।

चूर-चूर हो गया शिखर पर, अक्षत शिशु सर्वाङ्ग,
प्रतिसूर्य खग ले बालक को बोला यह वज्रांग रे ।।५।।

मूर्छित सती को होश कराया, बालक गोद बिठाया ।
हर्षित हो गयी जीवित सुत पा, हर्ष हृदय नहीं माया रे ।।६।।

हनुरुह नगर ले गया खगपति, भाभी संग सती रहती ।
हनुरुह पुर के कारण शिशु को, हनुमान है कहती रे ।। ७ ।।

शिशु से किशोर बना हनुमत अब, शिक्षा दीक्षा पाके ।
महावीर हनुमान है 'सज्जन' देखत नयन न थाके रे ।। ८ ।।

ढाल ४

[तर्ज—कुवरी ने जादू० राग-सोरठ]

पालो शील सदा सुखकारी । सर्वश्रेष्ठ है जग ब्रह्मचारी रे ।।स्थायी।।

सर्व व्रतों में शीलव्रत को, सर्वोत्कृष्ट बतलाया ।
सर्वव्रती नहीं, थे ब्रह्मचारी, नव नारद मुक्ति सिधाया रे,
पालो शील सदा सुखकारी ।। १ ।।

विजयी पवनञ्जय हर्षित हो, लौट स्वदेश जब आये ।
स्वागत कर प्रह्लाद नृपति ने पुर में पुत्र वधाये रे,
पालो शील सदा सुखकारी ।। २ ।।

पिता जननी पद नमन किया फिर, चले प्रिया के भवन में ।
केतुमती माता कहे कुलटा, निःसृत करदी वन में रे,
पालो शील सदा सुखकारी ॥ ३ ॥

मानो किसी ने प्राण शक्ति से, हीन कर दिया तन को ।
स्खलित गति से पवनञ्जय तब, चल दिये अपने भवन को रे,
पालो शील सदा सुखकारी ॥ ४ ॥

मूर्च्छित हो गिर पड़े पलङ्ग पर, तत्क्षण प्रहस्त वहाँ आया ।
उपचारों से सुधि जब आयी, है महेन्द्रपुर जाया रे,
पालो शील सदा सुखकारी ॥ ५ ॥

महेन्द्रपुर पवनञ्जय पहुँचे, पर वहाँ प्रिया नहीं पायी ।
वन में जाकर आत्मघात हित, काष्ठ चिता है रचायी रे,
पालो शील सदा सुखकारी— ॥ ६ ॥

पुण्य प्रभाव से प्रति-सूर्य खग, अञ्जना ले वहाँ आया ।
हाथ पकड़ के चिता से उतारा, अञ्जना लख हर्षाया रे,
पालो शील सदा सुखकारी ॥ ७ ॥

प्रतिसूर्य की प्रार्थना से, आये हनुरुह सर्व ।
भगिनीपति अंक भागिनेय दे, 'सज्जन' मनाया पर्व रे,
पालो शील सदा सुखकारी ॥ ८ ॥

दोहा

शयनगृह में दम्पति, बैठे कोमल सेज ।
धर्मपत्नी मुख देखते, कृशतनु किन्तु सतेज ॥ १ ॥

मैं अज्ञानी मूढ़ था, क्षमा करो मुझ भूल ।
कहे अञ्जना कर्मफल, यही सुख दुख का मूल ॥ २ ॥

विद्यायें कई भेंट दी, कर सत्कार विशेष ।
प्रतिसूर्य ने किये विदा, पवनजी चले स्वदेश ॥ ३ ॥

ढाल ५

(राग—धन्याश्री)

मङ्गलमय आया आज प्रभात ।
हर्षित मात रु तात । मंगल.... ॥ स्थायी ॥

सूर्य नाद निनादित दश दिशि, हो रहा जय जय कार ।
राज दम्पति सम्मुख आये, मन में हर्ष अपार, मं— ॥ १ ॥

पुत्र पौत्र सह पुत्रवधू को, मुक्ताफल से वधाय ।
हर्षाश्रु नीर से अभिषिक्त करें, हर्ष हृदय न समाय, मं— ॥ २ ॥

नगर शृंगारित प्रजा प्रहर्षित, कर रही थी प्रणिपात ।
प्रति नमन करते स्मितमुख से; सबके प्रफुल्लित गात, मं— ॥ ३ ॥

राज भवन में आये सब ही हो रहा जय जय नाद ।
अभिनव जन्म है पवनञ्जय का, प्रसृत यह संवाद, मं— ॥ ४ ॥

पत्नी पुत्र सह प्रवेश करते, पवनञ्जय युवराज ।
धन्य घड़ी धन्य भाग्य हमारे, स्वर्ण सूर्योदय आज, मं— ॥ ५ ॥

अष्टाह्निक उत्सव जिन मन्दिर, अमारि पटह सर्वदेश ।
मुक्त हस्त दे दान नरेश्वर, शील की महिमा विशेष, मं— ॥ ६ ॥

पश्चात्ताप किया अति मन में रानी जाना जब राज ।
राज दम्पत्ति पुत्रवधू से, क्षमा माँगते आज, मं— ॥ ७ ॥

पौत्र देख कहे मात पवन से, यह तेरा अंगजात ।
तेरे जैसा पुत्र यह तेरा, रूप रंग मुख गात, मं— ॥ ८ ॥

महेन्द्र नृप भी स्वजन संग ले, आये मिलने काज ।
क्षमा माँगते अञ्जना सती से, हो गया हम से अकाज, मं— ॥ ९ ॥

नृप दम्पत्ति द्वय संयम लेते, स्वसुत राज्याभिषेक ।
आत्म मुक्ति की करते साधना, यह ही आर्यविवेक, मं— ॥ १० ॥

पवनञ्जय और अञ्जना सती, रहे स्वगृह कुछ काल।
हनुमत् सुत को राज्य देकर, छोड़ा सब जञ्जाल, मं— ॥ ११ ॥
मुनि धर्म स्वीकृत कर तप से, घनघाती कर नाश।
सर्वज्ञ सर्वदर्शी बन करते, तत्त्व ज्ञान प्रकाश, मं— ॥ १२ ॥
राम भक्त हनुमान् भी अद्भुत, वीर हैं जग विख्यात।
जन जन के आराध्य बनें वे, करते सब प्रणिपात, मं— ॥ १३ ॥
मुक्ति पथ के सभी पथिक थे, जीवन था आदर्श।
पावन तन मन भी हो जाते, करते पद संस्पर्श, मं— ॥ १४ ॥
दर्शन ज्ञान चरण वीर्यादि भांगे सादि अनन्त।
सिद्ध बुद्ध और मुक्त बने वे, प्रकटे चार अनन्त, मं— ॥ १५ ॥

कलश प्रशस्ति

सुविहित परम्पर गच्छ खरतर संवेगपक्ष सुराजता,
सुखसिन्धु शाखा वर्त्तमाने उदयसूरि विराजता।
पुण्यश्री पुण्यशालिनी श्री स्वर्ण ज्ञान विचक्षणा,
चरणरज कण "सज्जन" श्री करी रचना विलक्षणा ॥ १ ॥



१२. महासती मृगावती की सज्झाय

॥ दोहा ॥

श्री ऋषभादि जिनेन्द्र नमि, पुण्डरीकादि गणेश।
ब्राह्मी आदि षोडश सती, नमते जिन्हें सुरेश ॥ १ ॥
मृगावती स्वबुद्धि से, रखे शील और राज।
संयम लेकर महासती, साधे आतम काज ॥ २ ॥

ढाल—१

(तर्ज—नगरी नगरी द्वारे द्वारे)

आओ आओ सतियों का हम शुभ मन से गुण गान करें।
शीलवान् नरनारी जग में स्वपर का कल्याण करें—॥स्थायी॥

वैशालीपति चेटक राजा, महावीर के श्रावक थे, महा०
महा श्रद्धालु द्वादशव्रत धर, जिन शासन के प्रभावक थे, जिन०
वर्द्धमान महावीर के मामा, धीर वीर वर महिमा धरें, आओ—॥१॥

पद्मावती मृगावती आदि, सप्त पुत्रियाँ शीलवती, सप्त०
कहा वीर ने पर्षद् सम्मुख, सातों ही हैं महासती, सातों०
कौशाम्बी पति शतानीक को, मृगावती पतिरूप वरे, आओ—॥२॥

दैविक वरधर कलाकार इक, शतानीक के यहाँ आया, शता०
प्रसन्न हो नरपति ने उससे, चित्रभवन इक बनवाया, चित्र०
दर्शक जन देखें चित्रों को मुक्त कण्ठ से कीर्त्ति करें, आओ—॥३॥

मृगावती की प्रतिच्छवि भी, राजा ने इक बनवायी, राजा०
चित्रकार ने जंघा पर, तिल की अनुकृति भी दिखलायी, तिल०
देख कुपित नृप चित्रकार को, दक्षिण हस्त विहीन करे, आओ—॥४॥

गया अवन्तिनाथ निकट वहाँ, मृगावती का चित्र रखा, मृगा०
प्रद्योतन कामुक व्यभिचारी, मानो रावण का ही सखा, मानो०
भेजा दूत मृगावती भेजो, नीच परस्त्री वाञ्छा धरे, आओ—॥५॥

शतानीक सुन कोपाविष्ट कहे, कैसा नीच अधम प्राणी, कैसा०
परनारी की इच्छा करता, भूला नीति और जिनवाणी, भूला०
निर्भर्त्सना की दूत की वह जा, स्वनृपति के कान भरे, आओ—॥६॥

आया चढ़ कौशाम्बी पर वह, चारों ओर नगर घेरा, चारों०
मृगावती को भेजो शीघ्र, आदेश यही है बस मेरा, आ०
"सज्जन" रुग्ण थे शतानीक नृप, उदयन किशोर वय धरे, आओ—॥७॥

दोहा

मृगावती बुद्धिमती, साहस धरे असीम।
नगर द्वार सब बन्द कर, रण सज्जा करे भीम ॥१॥
उज्जयिनीपति के निकट, भेजा शीघ्र ही दूत।
स्वामी रोगाक्रान्त है, किशोर है मम पूत ॥२॥
बुद्धिमान भगिनीपति, करिये नहीं अनीति।
आक्रमण करना रुग्ण पर, नहीं वीरनर रीति ॥३॥

ढाल—२

[तर्ज—आखिर नार परायी है (गाली मारवाड़ी)
अथवा मन मूरख क्यों भरमाया है]

श्री मृगावती सती नारी है अब संकट आया भारी है ॥स्थायी॥
असाध्य रोग पीड़ित थे राजा, अब आ गया लेने यम राजा,
हल चल हो रही भारी है, संकट—॥१॥
धर्म संवल जो साथ बंधाती, धर्म पत्नी तो वह कहलाती,
रानी पति-मृत्यु सुधारी है, संकट—॥२॥
अवन्ति पति को यों कहलावे, शरणागत हम क्रोध न लावें,
कूटनीति दिल धारी है, संकट—॥३॥
पुत्र है बालक रक्षक हो तुम, राज्य को सुदृढ़ सबल करो तुम,
इतनी विनती हमारी है संकट—॥४॥
प्रद्योतन ने प्रार्थना मानी, वत्सराज्य उदयन का जानी,
अब मृगावती तो हमारी है, संकट—॥५॥
प्राकार पुनः दृढ़तम बनवाया, सैन्य चतुर्विध सज्ज कराया,
राज्य व्यवस्था सुधारी है, संकट—॥६॥

अन्तर्यामी वीर विभु हैं, समवसरे महावीर प्रभु हैं,
धर्म रक्षक पद धारी हैं, संकट—॥७॥

मृगावती प्रभु दर्शन जावे, पुत्र प्रद्योतन अंक बिठावे,
लूं दीक्षा यह विचारी है, संकट—॥८॥

प्रद्योतन प्रभु निकट क्या बोले, लज्जित हो स्व हृदय टटोले,
धिग् धिग् मम मति मारी है, संकट—॥९॥

दीक्षा लेकर मृगावती सती, चन्दना शिष्या अति विनयवती,
संकट मिट गया भारी है, संकट—॥१०॥

द्वादश परिषद् समवसरण में, सभी तन्मय प्रभु वचन श्रवण में,
पीते वचन सुधावारी है, संकट—॥११॥

विमान सह सूर्यचन्द्र थे आये, सन्ध्या हो गयी जान न पाये,
बैठे सभी नर नारी हैं, संकट—॥१२॥

चन्दनबाला आदि आर्यागण उठ गयी सन्ध्या पूर्व ही तत्क्षण,
निज आवास पधारी हैं, संकट—॥१३॥

मृगावती प्रभु वाणी लीना, बैठी रही भक्ति रस पीना,
गये रवि शशि तम भारी है, संकट—॥१४॥

श्रमणी न देख के सती घबरायी, उठकर द्रुत उपाश्रय आई,
कहै 'सज्जन' भूलकी भारी है, संकट—॥१५॥

दोहा

सूर्यचन्द्र आलोक में, पूज्ये ! रहा न भान।
क्षमा करो अपराध यह, अब रहूँगी सावधान ॥१॥

ढाल—३

(तर्ज—केशरियो कामणगारो)

मृगावती मन चिन्ता करती, मैं कैसी अज्ञान रही यों,
मन दुख धरती रे, सती चित्त चिन्तन करती ।।स्थायी।।

हा ! हा ! मैं हूँ कैसी अभागी, उपालम्भ की बन गयी भागी,
अज्ञानी हो ज्ञान का अभिमान मैं धरती रे, सती—।।१।।

ओ आत्मन् ! तू अनन्त ज्ञानी, अनन्त दर्शन शक्ति विधानी,
जड़ संग से जड़ता बढ़ी सब शक्ति हरती रे, सती—।।२।।

गुरुवर्या पट्टे पर सोती, मृगावती स्व पाप को धोती,
बाह्य भाव तज स्वभाव में सती सतत विचरती रे, सती—।।३।।

तन यह जड़ मैं चेतन सत्ता, स्वरूप भोक्ता स्वभाव कर्त्ता,
अष्ट कर्म से पृथक रूप मैं ध्यान यों धरती रे, सती—।।४।।

क्षपक श्रेणी में आत्मशुद्धि कर, क्षण में केवलज्ञान ज्योतिधर,
बन सर्वज्ञ मृगावती गुरु सेवा करती रे, सती— ।।५।।

चन्दना कर था नीचे लटकता, समीप आ रहा सर्प सरकता,
जान ज्ञान से मृगावती कर ऊपर धरती रे, सती— ।।६।।

जागृत चन्दना पूछे मेरा, हाथ उठाया क्यों ? है अँधेरा,
भगवति ! नाग था आरहा कैसे नहीं धरती रे, सती-।।७।।

घोर तमिस्रा निशा समय में, कैसे दिख गया ? हूँ विस्मय में,
पूज्ये ! जाना ज्ञान से क्यों विस्मय करती रे, सती— ।।८।।

प्रतिपाती या अप्रतिपाती, बात समझ में कुछ नहीं आती,
अप्रतिपाती कहे मृगावती विनय आचरती रे, सती— ।।९।।

सर्वज्ञा नहीं जाना मैंने, हा ! आशातना करदी मैंने,
मिथ्यादुष्कृत देती चन्दना केवल वरती रे, सती— ।।१०।।

धन्य धन्य वे मुक्तिगामिनी गुरु शिष्या द्वय भाग्यशालिनी,
ज्ञान ज्योति में प्रातः नित्य 'सज्जनश्री' स्मरती रे, सती— ॥११॥

:— कलश :—

स्वच्छ खरतरगच्छ सुविहित दत्त चन्द्र सुमणिधरा,
कुशल दादा कुशल कर्ता चन्द्रसूरि युगवरा।
सुख सिन्धुगण सम्प्रति उदयगणि, पुण्यश्री पट्टधारिणी,
सुवर्णज्ञान सुविचक्षण श्री सज्जन कृति मनोहारिणी ॥१।



१३. महासती मदनरेखा की सज्झाय

॥ दोहा ॥

श्री वर्द्धमान जिनेन्द्र को सविनय करूं प्रणाम।
गणधर श्री गौतम नमूं सकल लब्धि गुणधाम ॥ १॥
श्रुत देवी वागीश्वरी, जिनमुख वासिनी मात।
सती मयणरेखा कहूँ पदकज कर प्रणिपात ॥ २ ॥

ढाल—१
(तर्ज—राधेश्याम)

महा मनस्विनी मदनरेखा ने करी शील की रक्षा थी।
विग्रह शान्त किया पुत्रों का धर्म नीति में दक्षा थी ॥स्थायी॥
धर्म पत्नियाँ ऐसी होती मयणरेखा के जैसी हो,
वज्र हृदय कर पति की गति को खूब सुधारे वैसी हो।

उत्तर भारत में नगर सुदर्शन नामारूप सुदर्शन था,
शोभा लख लज्जित अलका का ऊर्ध्वलोक निर्वासन था— ॥१॥

मनोरथ युगबाहु बन्धु द्वय एक नृपति दूजा युवराज,
प्रेम परस्पर राम लखन सा रूपरंग मानो रतिराज।

युगबाहु और मदनरेखा का चन्द्रयश सुत मन हरता,
रहते सुख से दम्पति थे पर दैव कुटिल देखो क्या करता— ॥२॥

कञ्चन कामिनी अनर्थ हेतु हैं, यह आगम का सत्य वचन,
देवासुर संग्राम हुआ फिर मानव का तो क्या है कथन।

देवाङ्गना सी भ्रातृ पत्नी को देख मनोरथ मन बिगड़ा,
हा! हा! धिग् धिग् कामदेव यह कहाँ न कराता है झगड़ा— ॥३॥

युगबाहु को भेज युद्ध में इक कुटनी दासी के साथ,
अलङ्कार सौन्दर्य प्रसाधन भेजे देना हाथों हाथ।

श्वसुर सम ये ज्येष्ठ हैं मेरे, भेजे हैं तो क्या अनुचित,
सरलबुद्धि सती मदनरेखा ने विनय भाव से किये स्वीकृत— ॥४॥

कुटिला ने नृप आने की जब बात कही सती चित चमकी,
रे दासी क्यों असत्य कहती बाहर निकाला दे धमकी।

सोचा रहना अन्तःपुर में खतरे से नहीं खाली है,
उपवन में स्व-परिजन सह रहूँ फिर न बात भयवाली है— ॥५॥

विजय ध्वज फहरा युगबाहु शीघ्र लौट कर घर आये,
मदनरेखा थी उपवन में युवराज वहीं पर चल आये।

दम्पति सुख पूर्वक उपवन में जीवन यापन करते थे,
धर्म नीति पूर्वक रहते श्रावक चर्या आचरते थे— ॥६॥

मयणरेखा है गर्भवती सन्निकट प्रसव की वेला है,
मनोरथ आया भ्रातृ मिलन मिष देखा युगबाहु अकेला है।

आते ही किया वार खड्ग से भयभ्रान्त वहाँ से भागा,
मार्ग भयंकर विषधर काटा पाप का फल भोगन लागा—॥७॥

मयणरेखा पति मस्तक अंक ले, निर्यामणा झट करवाती,
महामन्त्र और चार शरण दे कल्याण मित्र है बन जाती।
शील सुरक्षा करने को फिर सती दौड़ वन में जाती,
अन्धकार था गहन अरण्य था पद पद पर ठोकर खाती—॥८॥

काँटे कंकर पत्थर चुभते सती अकेली वहाँ फिरती,
वीतराग की थी उपासिका नवकार मन्त्र सुमरण करती।
असूर्यम्पश्या राजरानी वह कमल कोमला, गर्भवती,
आसन्न प्रसवा आज "सज्जन" सिंहनी सी वन में फिरती—॥९॥

दोहा

सघन वृक्ष की छाँह में, करती थी विश्राम।
प्रसव वेदना हो रही, रात्रि अन्तिम याम ॥१॥

ढाल—२

(तर्ज—मां त्रिसला रे प्यारे ने०)

सतियों पर ही संकट आते श्रुति स्मृतियाँ यह कहती हैं।
आर्य नारियाँ शील सुरक्षा हेतु सब दुःख सहती हैं—॥ स्थायी ॥

घोर वेदना उठी उदर में मयणा हो गयी बेसुध सी,
जन्म हुआ पुण्यवान् पुत्र का शुद्धि कार्य करे सम्बुध सी।
सरिता तट फल समृद्ध तरु थे उस उपवन में रहती है, आ—॥१॥

कुछ दिन बीते सुख से वन में मदनरेखा सती नारी के,
सुप्त पुत्र तरुतल रख चलदी शौच हेतु तट वारी के।
पुण्य प्रताप हो जागृत तो फिर विपदाएँ नहीं रहती हैं, आ—॥२॥
मिथिलापति वन क्रीड़ा करते सौभाग्यवश वहाँ आते हैं,
तेजस्वी शिशु देख अकेला पुत्र रूप ले जाते हैं।
पुत्रहीन महारानी भी शिशु पाकर महोत्सव करती है, आ—॥३॥
मयणरेखा जब वापिस आई शिशु शय्या तब खाली थी,
धक् से रह गयी हृदयाघात लगा बेसुध होने वाली थी।
किन्तु पुण्यशाली जन पर आयीं विपत्तियाँ टलती हैं, आ—॥४॥
विद्याधर का यान गगन में संकट सती पर देख रुका,
कारण जानने विद्याधर भी देखे अपनी गर्दन झुका।
यान उतारा अवनितल पर देखा रूपवती युवती है, आ—॥५॥
रूप के अम्बार सी तुम कौन हो एकाकिनी क्यों वन में हो ?
विद्याधर मैं संग चलो ! तुम बस गयी मेरे मन में हो ?
प्राणों से प्रिय आप हैं रानी ! क्यों यहाँ पर दुःख सहती हैं, आ—॥७॥
पकड़ बलात् यान में रख दिया भयभ्रान्त हो गयी मूर्च्छित।
विद्याधर के शीतोपचार से, त्वरित हो गयी सती सुस्थित।
कहाँ जा रहे थे ? अब कहाँ जाते ? यों नभचर से पूछती है, आ—॥७॥
विद्याधर कहें दर्शन करने जा रहा था, मैं नन्दीश्वर,
तुम मिल गयीं सौभाग्य से मुझको जाऊँगा अब पहले घर।
तो पहले नन्दीश्वर चलिये, आर्य नीति यह कहती है, आ—॥८॥
मुझको भी शाश्वत तीर्थ के दर्शन करा दो हे "सज्जन"
धन्य और कृतपुण्य बनूंगी नन्दीश्वर का कर स्पर्शन।
मानूंगी उपकार आपका, सविनय सती यों कहती है, आ—॥६॥

।। दोहा ।।

खग ने नन्दीश्वर द्वीप की ओर चलाया विमान।
सती मन में हर्षित हुई, है उत्तम दिनमान ।।१।।
वाम नयन करता स्फुरण, हर्ष से पुलकित गात।
शाश्वत जिन दर्शन किये, माना धन्य प्रभात ।।२।।

ढाल ३

(तर्ज—दिल लूटने वाले जादूगर)

अष्टम द्वीप नन्दीश्वर अद्भुत, शाश्वत तीर्थ कहाता है।
चारण मुनि जाते वन्दन को भगवती सूत्र यों गाता है ।। स्थायी ।।

ऋषभानन चन्द्रानन जिनवर, वारिषेण वर्द्धमान है,
विविध रत्न मय जिनवर प्रतिमा धनुपंचशत देहमान है,
भक्तिभाव से वन्दन करते, भव बन्धन कट जाता है, आ—।।१।।

मयणरेखा ने दर्शन पाके, धन जीवन अपना माना,
रोमाञ्च हुआ हर्षाश्रु नयन में दुःख को तो सपना जाना।
अद्भुत अनुपम आनन्द हुआ हृदय न हर्ष समाता है, आ—।।२।।

उपवन में चारण मुनिवर के अकस्मात् पाये दर्शन,
विद्याधर के पिता मुनीश्वर आये थे तीर्थ करने वन्दन।
आसन्न भव्य ही स्थावर जंगम तीर्थों के दर्शन पाता है, आ—।।३।।

विद्याधर और मयणरेखा ने गुरु को विधि से वन्दन किया।
इतने में एक सुरवर आया प्रथम सती को नमन किया।
महोपकारिणी भव सुधारिणी, मेरी भाग्य विधाता है, आ—।।४।।

फिर मुनि को वन्दन कर कहता, सती शिरोमणि नारी है,
कल्याणमित्र धर्मपत्नी सच्ची इसने मम मृत्यु सुधारी है।
युगबाहु का जीव है यह सुर अभी स्वर्ग से आता है, आ....।।५।।

सती पूछे चारण मुनिवर से, शिशु का किसने हरण किया,
मुनि कहे पुत्रहीन मिथिला-पति पुत्र रूप से भरण किया।
दीक्षार्थिनी मयण को सुरवर भरत क्षेत्र ले आता है, आ—॥६॥

सती ने शुद्ध भाव से संयम आर्यागण से धार लिया,
आसेविनी ग्रहिणी शिक्षा ले, धन्य सफल अवतार किया
किसी भाग्यशाली 'सज्जन' को, श्रामण्य उदय में आता है, आ—॥७॥

॥ दोहा ॥

सुदर्शनपुर चन्द्रयशा, भोगे राज्य अशेष।
मिथिला में लघु पुत्र नमि नरपतियों में विशेष ॥ १ ॥

ढाल ४

(राग—भैरवी या राधेश्याम तर्ज में)

शील स्वभाव नम्र प्रकृति के उच्च विचार सदाचारी।
विनयी करुणामयी हृदय के धन्य मनस्वी नरनारी ॥ स्थायी ॥

नमि राजा का गजवर मद भर आलानस्तम्भ उत्खनन किया,
चन्द्रयशा की राज्य भूमि गत आम्रवन आगमन किया।
देखा वन रक्षकगण ने वश कर लाये अंकुश धारी, शील— ॥१॥

गजशाला में बाँध हर्ष से नृप को बधाई देते हैं,
श्वेत ऐरावण वारण उत्तम कह उपहार भी लेते हैं।
हर्षित होते देख देख कर गजशाला के कर्मचारी, शील—॥२॥

नमि ने जाना सुदर्शनपुर गज दूत भेज यों कहलाया,
एरावण को शीघ्र भेज दो तोड़ शृंखला वह आया।
चन्द्रयशा कहे स्वयं आ गया, रण की करलें तैयारी, शील—॥३॥

चतुरंगिणी सेना ले नमि नृप, चन्द्रयशा पर चढ़ आये,
चन्द्रयशा भी सीमा पर आ सैन्य शिविर वहाँ लगवाये।
सुना मयणरेखा श्रमणी ने गुरु से बात कही सारी, शील—॥४॥

सहोदर भ्राता लड़ें परस्पर लाखों का संहार वहाँ,
होगा भगवति ! भान कराने मुझे भेज दें आप वहाँ,
नहीं जानते हम सोदर हैं, बतलाऊँ बातें सारी, शील—॥५॥

पा आज्ञा करुणार्द्र चित्त हो लेके कतिपय सतियों को,
करने विरत घोर हिंसा से दोनों ही नरपतियों को।
देख शिविर में आर्यागण को, सब आश्चर्य करें भारी, शील—॥६॥

चन्द्रयशा सुन सम्मुख आये, सती कहे भद्र ! पहचानो मुझे,
मयणरेखा हूँ लघु भ्राता से युद्ध विरत करने को तुझे।
गुरु आज्ञा ले आई यहाँ पर बात कहूँ बीती सारी, शील—॥७॥

शील रक्षा हित वन में भागी वहीं इसने था जन्म लिया,
मिथिलापति ले गये उठाकर पुत्र बनाकर राज्य दिया।
नमि है सहोदर बन्धु तुम्हारा है, वात्सल्य का अधिकारी, शील—॥८॥

चले चन्द्रयश नमि नृप भी सुन अग्रज है सम्मुख आये,
माता भ्राता के चरणों में वन्दन कर अति हरषाये।
युद्धभूमि रंगभूमि बन गयी मंगल तूर्य बजे भारी, शील—॥९॥

आर्या जननी से इतिवृत्त सुन विस्मित दोनों बन्धु हुये,
कर्मगति अति विचित्र जान कर धर्मध्यान में प्रवृत्त हुये।
चन्द्रयशा दे राज्य बन्धु को बने पंच महाव्रत धारी, शील—॥१०॥

प्रत्येकबुद्ध हुये नमि राजर्षि घर्षण सुनकर कंकण का,
सर्व त्याग निर्ग्रन्थ बने नहीं विलम्ब किया फिर इक क्षण का।
नहीं कृत्रिम यह कथा इसी का उत्तराध्ययन साक्षीकारी, शील—॥११॥

आर्यदेश की वीर नारी की अद्भुत एक कहानी है,
झकझोरती आधुनिक नारी को यद्यपि बहुत पुरानी है।
अमर नाम है महासतियों का जपते प्रातः जयकारी, शील—॥१२॥

संयम तप से कर्म क्षय कर माता पुत्र सब मुक्त हुये।
दर्शन ज्ञान चरण और वीर्य के अनन्त चतुष्टय युक्त हुये।
ज्ञान विचक्षण पद पाकर के 'सज्जन' मन आनन्दकारी, शील—॥१३॥

—: कलश :—

सुखसिन्धु श्री भगवान त्रिभुवन नाथ हरिसागर सदा,
आनन्द रत्नाकर कवीन्द्र सु उदय कान्ति प्रणमूँ मुदा।
उद्योत लक्ष्मी पुण्यश्री गुरु स्वर्ण ज्ञान विचक्षणा,
चरणरज 'सज्जन' सुगोता मदनरेखा सुदक्षिणा॥१॥

—❒—

१४. ऋषिदत्ता की सज्झाय

ढाल—१

(राग—आशावरी)

धन्य ऋषिदत्ता आदर्श नारी, दया धैर्य सहिष्णुता धारी—॥ स्थायी॥

अमरावती के हरिषेण नृप, वानप्रस्थ बने ज्ञानी।
गर्भवती पर नहीं कहा नृप से प्रियदर्शना महारानी रे—॥१॥

संग आई आश्रम में जन्मी, ऋषिदत्ता सुकुमारी।
देव कन्या सी रूपवती थी, रति लजावनहारी रे—॥२॥

उपवन पुष्प-सी कोमल रानी, प्रसूति रोग से अवसान।
पिता तपस्वी पाले कन्या, शिक्षा दी ज्ञान विज्ञान रे—॥३॥

मुग्धा मृगशावकवत् कन्या वन उपवन में विचरती।
ज्ञान ध्यान प्रभु पूजा सेवा, पितृ शुश्रूषा करती रे— ॥४॥

परिणय करने जाता कनकरथ, ऋषिदत्ता को निहाले।
वृद्ध तपस्वी कन्यादान कर, निश्चिन्त हो व्रत पाले रे— ॥५॥

मध्यमार्ग से लौटा कनकरथ, उधर प्रतीक्षा करती।
राजकुमारी रुक्मिणी सुन यह, अति दुःख मन में धरती रे— ॥६॥

मन्त्र तन्त्र यन्त्रादि विद्या, सम्पन्न योगिनी एक।
भेजी रुक्मिणी वहाँ आकर के, करे उपाय अनेक— ॥७॥

ऋषिदत्ता पर कलंक लगावे, डाकिनी मनुष्य हत्यारी।
श्वसुर नृप को प्रत्यक्ष बतावें, योगिनी महा धूतारी— ॥८॥

नृपति देखके महा क्रोधित हो, ऋषिदत्ता भेजे वन में।
घोर अरण्य श्वापद जन्तु वहाँ 'सज्जन' नर भक्षी जन में— ॥९॥

ढाल २

जगत में शील ही रक्षाकारी, शील की महिमा है भारी ॥टेर॥

सर्प पुष्प माला बन जाता, वह्नि बनता वारी।
सिंहादि हिंसक जन्तु भी, नमते शीलवती नारी रे—॥१॥

किन्तु पुण्यबल जाग्रत सती का, पहुँची स्व आश्रम रहती।
विद्या बल से पुरुष रूप धर, पति वियोग को सहती रे—॥२॥

कनकरथ स्व पित्राज्ञा से, रुक्मिणी विवाह को जावे।
आश्रम में मिले ऋषि कुंवर को; मित्र बना ले जावे रे—॥३॥

परिणय करे रुक्मिणी संग तब सब गुप्त बात वह कहती।
ऋषिदत्ता पर मोहित आप थे, कब तक विरह मैं सहती रे—॥४॥

योगिनी भेज कलंक लगवाया, डाकिनी दूर हटायी।
कब तक सहती आप बिना मैं, अन्त में युक्ति लगायी रे—॥५॥

सुनके कनकरथ मूर्च्छित हो गया, जब कुछ होश में आया।
अग्नि प्रवेश करूँगा मैं तो, हा ! हा ! धिग् जगमाया रे—॥६॥

प्राणप्रिया मेरी ऋषिदत्ता, सरल स्वाभावा नारी।
पतिव्रता अति विनयवती वह, निरपराधिनी नारी रे—॥७॥

रुक्मिणी है हत्यारी उसकी, नहीं सामने आवे।
चिता करो तैयार शीघ्र ही, ऐसी आज्ञा सुनावे रे—॥८॥

पुरुष रूप रही ऋषिदत्ता तब, स्व स्वरूप प्रकटावे।
चिता प्रवेश करते स्वपति के, तत्क्षण प्राण बचावे रे—॥९॥

करुणा करके रुक्मिणी का वह, अपराध माफ करावे।
स्व स्व कर्म भोगते प्राणी, अन्य तो निमित्त कहावे रे—॥१०॥

विशाल हृदया ऋषिदत्ता ने, दोनों वंश बचाया।
सतियाँ ज्ञानमय होतीं ऐसी "सज्जन" ने यश गाया रे—॥११॥



१५. पर्यूषण पर्व सज्झाय

(प्रवासी लइजाजो रे संदेश अथवा भजो सब सार मंत्र नवकार)

भविक जन पर्यूषण जयकार, आराधे धन्य नरनार—॥स्थायी॥

पर्व शिरोमणि पर्यूषण है, जिन शासन शृंगार,
आठ दिनों तक जैन जनता, विषय कषाय निवार रे, भविक—॥१॥

जिन मन्दिरों में आठों दिन तक, करो जिन भक्ति अपार,
सामायिक पौषध और जप तप, पालो शील सुखकार रे, भविक—॥२॥

कल्पसूत्र को ठाट बाट से, ले जाओ गुरुद्वार,
पूजा कर एकाग्र चित्त सुन, पवित्र करो अवतार रे, भविक—॥३॥

अट्ठाई दिन उपवास करो और वेला कर, सुनो कल्प,
संवच्छरी का अट्ठम कर देवो, वर्षीदान अनल्प रे, भविक—॥४॥

मन की मृदुता मैत्री-भाव से, जीव खमावो सर्व,
आत्म शुद्धि हित शुद्ध मन से, आराधो यह पर्व रे, भविक—॥५॥

अभय और सुपात्र दान दे, अनुकम्पा मन धार,
यथाशक्ति जीवों की रक्षा कर भरो पुण्य भण्डार रे, भविक—॥६॥

उभयकाल प्रतिक्रमण करो रे, देव वन्दन तिहुँकाल,
ध्यानधरो अरिहन्त का मन में, कटे कर्म जंजाल रे, भविक—॥७॥

स्वधर्मी भक्ति कर भविजन, प्रभावना करो सार,
ऐसे भाग्यशाली बन कर के, सफल करो अवतार रे, भविक—॥८॥

लोकोत्तर यह पर्व है अनुपम, आध्यात्मिक सब कार्य,
ज्ञान सहित 'सज्जन' जन करते, यह आचरण आर्य रे,
भविक—॥९॥



औपदेशिक सज्झाय विभाग

(तर्ज—बाबा मन की आँखें खोल)

१. सुनलो प्रभुवाणी अनमोल——॥

विना सुने श्री जिनवर वाणी, कुछ भी नहीं समझता प्राणी,
प्रभु की वाणी सब गुण खाणी, अज्ञान हटाकर मन की आँखें,
झटपट देती खोल, सुनलो—॥१॥

एक अनेक का भेद बतावे, नित्यानित्य पक्ष समझावे,
अनन्तधर्मात्मक वस्तु कहावे, स्याद्वाद, काँटे पर सबका,
करती पूरा तोल, सुनलो—॥२॥

सप्तभंग युत है यह सुहाती, नय निक्षेप प्रमाण दिखाती,
हेयोपादेय ज्ञेय बताती, न्याय नीति से मिथ्यामत की,
खोले सारी पोल, सुनलो—॥४॥

त्यागमूर्ति और पर उपकारी, जिनने माया ममता मारी,
वीर वचन छेनी करधारी, जब तक सद्गुरु शिल्पी न मिलते,
रहता अनगढ़ टोल, सुनलो—॥४॥

ज्ञानी गुरुवर जब मिल जाते, सच्चे सुख का मार्ग दिखाते,
तप संयम से रहना सिखाते, ज्ञान के इस विषमय जीवन में,
देते अमृत घोल, सुनलो—॥५॥

आगम औषधि जो पी लेता, भव का रोग नहीं दुःख देता,
स्वस्थ हो बनता कर्म विजेता, चेतन शिव कमला को पाकर,
करता खूब किलोल, सुनलो—॥६॥

आनन्दामृत को वरषावे, ज्ञान की ज्योति घट में जगावे,
शुद्धोपयोग में सतत रमावे, ध्यान से सुनलो सब सज्जन जन,
तन-मन करके अडोल, सुनलो—॥७॥



२

(तर्ज—मोहे कौन करे भव पार)

ज्ञान विना अँधियारा, जीवन में ज्ञान विना—॥ स्थायी ॥
ज्ञान विना नर कुछ नहीं जाने, भला बुरा कुछ नहीं पहिचाने,
जैसे पशु बेचारा, जीवन—॥ १ ॥
कृत्याकृत्य को ज्ञान बतावे, दुष्पथ सत्पथ ज्ञान दिखावे,
ज्ञान से जानत सारा, जीवन—॥ २ ॥
अविद्या तम जब छाया हो, समझ में जब कुछ नहीं आया हो,
ज्ञान दीपक ही सहारा, जीवन—॥ ३ ॥
जीवन नैया भव सागर में, भटक रही हो उस अवसर में,
ज्ञान दिखाता किनारा, जीवन—॥ ४ ॥
मद कषाय आदि को शमाती, विषय वह्नि ज्वाला को बुझाती,
ज्ञानामृत जल धारा, जीवन—॥ ५ ॥
ज्ञान विना चारित्र विफल है, ज्ञान विना तप जप निष्फल है,
ज्ञान ही सफल आधारा, जीवन—॥ ६ ॥
परमानन्द पद ज्ञान से पावे, शुभ उपयोग में ज्ञान रमावे,
"सज्जन" जन मन प्यारा, जीवन—॥ ७ ॥



३

(राग वरहंस—कन्हैया ने धर कुंजन में मारी)

मन की गति है अजव निराली रे—॥ स्थायी ॥

पल में मन प्रमुदित हो जाता, पल में लाता लाली,
इधर उधर मन व्यर्थ भटकता, नहीं रहे छिन भर ठाली रे ॥ १ ॥

मर्कट ज्यों रहता है उछलता, कूदत डाली डाली,
पकड़ पकड़ कर रखने पर भी, भग जाता दे ताली रे ॥ २ ॥

संकल्प विकल्पों से प्रतिक्षण, यह कर्म बाँधता खाली,
कुछ भी नहीं समझ में आती, इसकी विपम प्रणाली रे ॥ ३ ॥

जीवन वन आनन्दमय वनता, चतुर जो हो मन माली,
मन वश करने को वस पीले, ज्ञान-सुधा की प्याली रे ॥ ४ ॥

शुद्धोपयोग में रहकर जिसने, मन की डोर संभाली,
"सज्जन" पा जाता है पदवी झट पट सिद्धों वाली रे ॥ ५ ॥



४

(राग देश—दुःख के अब दिन)

जग का झूँठा है सव नाता, जग का झूँठा—॥ स्थायी ॥

न तूं किसी का न कोई तेरा, चार दिनों का यहाँ है वसेरा,
कोई आता कोई जाता, जग—॥ १ ॥

यह दुनियां दोरंगी प्यारे, इसके हैं सव अजव नजारे,
कोई रोता कोई गाता, जग—॥ २ ॥

देह वनिया जब काढ़े दिवाला, काल वली का होगा निवाला,
कोई फिर न वचाता, जग—॥ ३ ॥

रे मन ! प्रभु का नाम सुमर ले, पुण्य कमाकर झोली भरले,
कोई साथ नहीं जाता, जग—॥ ४ ॥
आत्मिक आनन्द जब पावेगा, ज्ञानोपयोग में मन लावेगा,
"सज्जन" मन समझाता, जग—॥ ५ ॥



५

(राग—पीर पीर क्या करता)

रे—रे प्राणी ! प्रातः हुआ है उठ तू अब तो जाग—॥ टेर ॥
प्राची ने शृंगार किया है, रक्ताम्बर शिर धार लिया है,
समीर में मिल बहती जाती, सुखप्रद पुष्प पराग रे—रे ॥ १ ॥
उठो ! उठो ! ऐ दुनियाँ वालो, अपना-अपना काम संभालो,
मधुर स्वरों से गाते जाते, पक्षीगण यह राग रे—रे ॥ २ ॥
ब्रह्ममुहूर्त है यह अति सुन्दर, स्थिर मन से परमात्म ध्यानकर
छोड़ अरें दुनियाँ के धन्धे, आत्मधर्म में लाग रे—रे ॥ ३ ॥
अनुपम आनन्दप्रद यह अवसर, उदित हुआ शुभज्ञान दिवाकर
सद्उपयोग में रहले 'सज्जन' और भरम सब त्याग रे—रे ॥ ४ ॥



६

(राग—एक नया संसार बसाले)

एक नया संसार बसाऊँ, एक नया संसार—॥ स्थायी ॥
भेद न हो जहाँ अपने पर का, कौन पराया कौन है घर का,
हो समान व्यवहार, बसाऊँ—॥ १ ॥
दुःख का जहाँ लेश नहीं हो, ईर्ष्या तृष्णा क्लेश नहीं हो,
हों सुखी सभी नर-नार, बसाऊँ—॥ २ ॥

सभी जनों से मित्रता हो, नहीं किसी से शत्रुता हो,
हो सब में प्रेम प्रचार, बसाऊँ—॥ ३ ॥
आनन्दमय जीवन हो सारा, ज्ञानोपयोग का हो उजियारा,
"सज्जन" मन के विचार, बसाऊँ—॥ ४ ॥



७

(तर्ज—बिना प्रभु पार्श्व के)

भटकते हो पराये घर स्वकुल को क्यों लजाते हो,
कुमति के साथ में रहके, क्यों मेरा जी जलाते हो ॥ स्थायी ॥
करूं विनती पिया तुम से, [redacted]रा तो सीख मुझ मानो,
छोड़ दो संग कुमति का, अगर हित अपना चाहते हो ॥ १ ॥
अनन्ते जीवों को इसने, फँसाकर फन्दे में अपने,
दिखाई राह दोजख की, क्यों इससे दिल लगाते हो ॥ २ ॥
अनादिकाल से तुमको, फिराती है यह भव-भव में,
फिर भी तुम मानते नहीं हो, वो रूठे तुम मनाते हो ॥ ३ ॥
न बिगड़ा है अभी तक तो, चिदानन्द ! आपका कुछ भी,
मिला है पुण्य से नरतन, इसे क्यों फिर गंवाते हो ॥ ४ ॥
परम आनन्द पद दाता है बस शुभज्ञान ही जग में,
बनो उपयोगमय "सज्जन" मोक्ष पद को जो चाहते हो ॥ ५ ॥



८

[तर्ज—किससे करता है मूरख प्यार]

मन तू धर जिनवर का ध्यान, ज्ञान मान तेरा कौन है।
तेरा कौन है रे तेरा कौन है रे, तेरा कौन है—हाँ तेरा— ॥ स्थायी ॥
यह जीवन है रैन का सपना, यहाँ नहीं कोई है अपना,
—क्यों भूला है अपना भान, ज्ञान मान तेरा— ॥१॥

माता पिता पति भगिनी भ्राता, इस जग का झूंठा सब नाता,
करले स्वपर की पहचान, ज्ञान मान— ॥२॥

यह तन भी नहीं साथ चलेगा मित्र ! चिता में एक दिन जलेगा,
क्यों करता इसका अभिमान, ज्ञान मान— ॥३॥

जब तक जीवन है सुकृत करले, मन में निर्मल आनन्द भरले,
मत खो स्वर्णावसर यह महान, ज्ञान मान— ॥४॥

ज्ञान की ज्योति घट में जगाले, निज गुण में उपयोग लगाले,
"सज्जन" करले प्रभु गुण गान, ज्ञान मान— ॥५॥



९

(तर्ज—बाबा मन की आँखें खोल)

तेरा जीवन है अनमोल, जीवन है अनमोल— ॥ स्थायी ॥

जिसकी इन्द्र आशंसा करता, आगम वेद प्रशंसा करता,
इससे प्राणी शिवसुख वरता, उत्तम नरतन पाकर क्यों,
फिरता तू डावाँडोल, तेरा— ॥१॥

दुर्लभ यह मानव भव पाया, सुकृत से सार्थक कर काया,
रत्न चिन्तामणि हाथ में आया, मूर्ख विषय सुख कारण क्यों,
बेचे कौड़ी के मोल, तेरा— ॥२॥

जल बुद्बुद् ज्यों अस्थिर धन है, चपला चमकसम यह यौवन है,
क्षणभंगुर यह तेरा तन है, निशदिन मौत का तेरे शिर पर,
बाज रहा है ढोल, तेरा— ॥३॥

मोह नींद में क्यों सोता है, अमूल्य जीवन क्यों खोता है,
मन तू अन्धा क्यों होता है, ज्ञानाञ्जन से झटपट अब तो,
अन्तर् के पट खोल, तेरा— ॥४॥
आनन्दप्रद संयम श्री वरले, ज्ञान ज्योति मन मन्दिर भरले,
आत्मरूप के दर्शन करले, शुभ उपयोग में रहकर "सज्जन"
कब चेतेगा बोल, तेरा— ॥५॥



१०

(तर्ज—सखीरी मोरी—धन्याश्री)

ज्ञान से है उजियाला, जीवन में ज्ञान से— ॥ स्थायी ॥

ज्ञान विश्वगत वस्तु दिखाता, ज्ञान ही है कर्त्तव्य सिखाता,
चक्षुप्रद ज्ञान की शाला, ज्ञान— ॥ १ ॥
आत्मरूप के दर्शन तब हों, ज्ञान की कुञ्जी हाथ में जब हो,
खुल जाये मन का ताला, ज्ञान— ॥ २ ॥
ज्ञान से सञ्चित कर्म हटावें, ज्ञान भविष्य का बन्ध मिटावे,
कट जाये कर्म के जाला, ज्ञान— ॥ ३ ॥
मिश्री से भी ज्ञान मधुर है, श्रीखण्ड से भी अधिक रुचिर है,
ज्ञान है सरस रसाला, ज्ञान— ॥ ४ ॥
ज्ञान ही निर्मल गंग सलिल है, ज्ञान ही सुखकर मलयानिल है,
ज्ञान है अमृत प्याला, ज्ञान— ॥ ५ ॥
अनुपम आनन्द भरती मन में, ज्ञान भानु की ज्योति जीवन में,
कर देती है उजाला, ज्ञान— ॥ ६ ॥
शुद्ध उपयोग में ज्ञान लगावे, ज्ञान ही मोह निद्रा से जगावे,
'सज्जन' मन सुख देने वाला, ज्ञान— ॥ ७ ॥



११

[तर्ज—मैं वन की चिड़िया बन के]

तेरी अञ्जलि जल ज्यों, आयु छिन छिन जावे रे,
तेरे निकट काल यह दिन दिन आवे रे ———॥ स्थायी ॥

तू मोह नींद में सोया, अनमोल समय सब खोया,
उठ जाग जाग भ्रम त्याग त्याग, सद्गुरु तुझे समझावे—॥ १ ॥

इस तन का नहीं ठिकाना, नर तू क्यों हुआ दीवाना,
यह भोग रोग सम, सुखद योग इक, ज्ञानी यों फरमावे—॥ २ ॥

सच्चा आनन्द वह पावे, जो ज्ञान की ज्योति जगावे,
उपयोग धार यह ही है सार, 'सज्जन' यह बात सुनावे—॥ ३ ॥

□

१२

(तर्ज—सांवरो सुखदाई)

ऐसी होली मनाई, जिन्दगी यह, सफल वनाई— ॥ स्थायी ॥
अनन्त काल तक कुमति संग यह चेतन रहा भुलाई,
सद्गुरु ने सुमति दी मुझको तब सुबुद्धि मन आई।
कुमति को दूर हटाई, ऐसी— ॥ १ ॥

दुर्गति दाता अविरति तज अब, विरति में मति यह रमाई,
महाव्रत-धार सार सुख पाया, दुःख व दुविधा मिटाई।
सिद्धि हित सुविधायें पाई, ऐसी— ॥ २ ॥

जिन गुणगान की भंग तरंग में, अनुभव लाली छायी,
मग्न हुआ मन प्रभु के ध्यान में, चरणों में लय है लगाई।
पुद्गल से प्रीति घटाई, ऐसी— ॥ ३ ॥

पाकर सद्गुरु के शासन की, शीतल छाया सुखदाई,
तन मन का सन्ताप शमाया, अनुपम शान्ति सुहाई।
हृदय में अति हर्षाई, ऐसे— ॥ ४ ॥

आत्मिक आनन्द प्राप्ति हेतु उर, ज्ञान की ज्योति जगाई,
निज गुण में उपयोग लगाकर, दुर्गुण दृष्टि भगाई।
'सज्जन' मिल गावें बधाई, ऐसी— ॥ ५ ॥



१३

अपने धरम की खातिर जो कुछ कर जायेंगे,
जग में नाम वो अपना अमर कर जायेंगे— ॥ स्थायी ॥
अस्थिर यह वैभव है सारा तुम्हारा,
जो नर इस से, परोपकार कर जायेंगे। जग— ॥ १ ॥
महान् चक्रवर्ती या सम्राट नृप हो,
यहीं सारी सम्पत्ति को धर जायेंगे। जग— ॥ २ ॥
जीते व मरते सभी हैं जगत् में,
पर जीवन को सफल वे ही कर जायेंगे। जग— ॥ ३ ॥
करके देश व जाति, औ धर्म की सेवा,
फर्ज अपना वो यहाँ अदा कर जायेंगे। जग— ॥ ४ ॥
इनके उत्कर्ष में ही, है सबका भला,
इनके सुधरे से सब ही सुधर जायेंगे। जग— ॥ ५ ॥
सच्चे आनन्द भोगी बनेंगे वही,
ज्ञान दान से जग को जो भर जायेंगे। जग— ॥ ६ ॥
करके सदुपयोग नश्वर इस समृद्धि का,
'सज्जन' यश अपना विस्तृत वे कर जायेंगे। जग— ॥ ७ ॥



१४

(तर्ज—चन्दा देश पिया के जा)

रसने ! गीत प्रभु के गा—रसने ! गीत गाकर अपने पाये गुण को,
तू भी सफल बना, रसने ॥ स्थायी ॥

वीतराग प्रभु परमात्मा के, गुण वर्णन करके आतम के,
सब सन्ताप मिटा, रसने—॥ १ ॥

इस वाणी से रस वरषादे, मुरझाये जीवन सरसादे।
मन की कली खिला, रसने—॥ २ ॥

तन मन की सब सुधि विसरादे, प्रभु चरणों में चित को लगादे,
ऐसा ज्ञान सुना, रसने—॥ ३ ॥

वसती है तू जन वदन में, 'सज्जनों' के मन सदन में,
ज्ञान की ज्योति जगा, रसने—॥ ४ ॥



१५

(तर्ज—कोई रोके उसे)

ओ दुनियां वाले ! सोच जरा, इस दुनियां में तू आया क्यों ?
क्या सोचा कभी तूने इतना, मानव का तन यह पाया क्यों ? ॥स्थायी॥

सब देहों से जो उत्तम है,
वह मानव देह मिली तुझको,
इसकी उत्तमता खोने को,
विषयों से मलीन वनाया क्यों ? ओ—॥१॥

मानव मन में ही हो सकता,
जड़ जीव भेद का ज्ञान महा,
उस दिव्य तेज को मिथ्या के,
परदे में तूने छुपाया क्यों ? ओ—॥२॥

इस तन की महत्ता तो है,
त्याग तप और संयम में,
इस राजमार्ग को तज करके,
उन्मार्ग में पैर बढ़ाया क्यों ? ओ—॥३॥
है बार वार दुर्लभ मिलना,
नर तन का 'सज्जन' सुनले तू,
प्रभु चरण कमल में चित्त लगा,
उसको तूने विसराया क्यों ? ओ—॥४॥

□

१६

(तर्ज—यह जिन्दगी उसी की है जो किसी का हो गया)

यह जिन्दगी दिन चार है, आखिर को तू भी जायगा,
साथ क्या ले जायगा—॥ स्थायी ॥
लख चौरासी भोग कर, दुःख व सुख भोग कर,
किसी पुण्य के प्रताप से, मनुष्य जन्म प्राप्त कर,
यह अमूल्य जिन्दगी जो मूर्ख है गँवायगा,
साथ दुःख ले जायगा, यह—॥१॥
जग में लुभाना भूल है, ये तो कागज का फूल है,
गन्ध इसमें है नहीं, रंग उड़ा फिर धूल है,
बाह्य रूप रङ्ग पै, जो मूर्ख है लुभायगा,
न हाथ भी कुछ आयगा, यह—॥२॥
मतलब की दुनियाँ है सभी, मतलब के सारे यार हैं,
मतलब बिना न पूछते ये ही जगत व्यवहार है,
परोपकार सार है, कर सदा सुख पायगा,
पुण्य बाँध ले जायेगा, यह—॥३॥

धन माल तो है जा रहा, हो रहा क्यों मौन है,
सोचले ओ मनुष्य ! यहाँ, तेरा वहाँ कौन है,
मुट्ठी बांध आया था पसार हाथ जायगा,
साथ न कोई आयगा, यह—॥४॥

जाग ! देख ! आत्मरूप आपको पहचान ले,
त्याग मोह भोग का योग सार जान ले,
सज्जनों का संग कर मोक्ष को पा जायगा,
सिद्ध तू बन जायगा, यह—॥५॥



१७

(तर्ज—दम भर जो इधर मुँह फेरे—)

थोड़े दिन की जिन्दगानी ओ प्राणी !
यहाँ सभी चीज है फानी,
क्यों बन रहा तू अज्ञानी— ॥ स्थायी ॥

जिस काया पर इतराता, होगी वह राख का ढेर,
बिगड़ जाये एक क्षण भर में यह, नहीं लगे कुछ देर,
पल में हो जाय विरानी, ओ—॥१॥

जिस धन की अभिलाषा से, फिरता तू देश विदेश,
सुख दुःख धर्म अधर्म न गिनता, सहता कोटि क्लेश,
यह है अनर्थ की खानी, ओ—॥२॥

है चार दिनों का यौवन, तेरे सपनों का संसार,
आँख खुली सब झूँठा भासे, तन धन परिजन प्यार,
कहते 'सज्जन' यों ज्ञानी, ओ— ॥३॥



१८

(तर्ज—ओ दूर के मुसाफिर हमको भी साथ ले ले)

संसार के मुसाफिर दो दिन का यहाँ पै मेला रे,
दो दिन का यहाँ पै मेला तू जायेगा अकेला— ।।स्थायी।।

कर कर के कौड़ी कौड़ी, तू ने जो माया जोड़ी,
कर कर हिसाब तूने कौड़ी न किस पै न छोड़ी।
यहीं सब पड़ी रहेगी न संग जाय धेला रे,
न संग जाय धेला, तू जायगा अकेला ।।१।।

माता पिता व भाई सब, स्वार्थ की सगाई,
बिन स्वार्थ बनते दुश्मन यह है जगत सचाई।
कोई न यहाँ किसी का, झूंठा है सब झमेला रे,
झूठा है सब झमेला, तू जायेगा अकेला ।।२।।

है मोक्ष की निशानी, सुन "सज्जनों" की वाणी,
सुख की अगर है इच्छा, तप त्याग करले प्राणी,
होता है नित यहाँ पर, चला चली का खेला रे,
चला चली का खेला, तू जायगा अकेला ।।३।।



१९

नर तेरा चोला रतन अमोला, विरथा खोवो मतीना—।। स्थायी ।।

दुर्लभ है मानव तन पाना, अब के मूर्ख न इसे गँवाना,
जप तप करके सफल बनाना, गाफिल होवो मती ना, नर—।।१।।

सव तन में नर तन है आला, यह है मुक्ति देने वाला,
मानव ! यह है मोती माला, काँच मणि पोवो मती ना, नर—।।२।।

जायदाद धन माल खजाना, कुछ नहीं तेरे साथ में आना,
परहित में नित इसे लगाना, पाप तरु बोवो मती ना, नर—॥३॥
किसी जीव को नहीं सताना, दीन दुःखी पर करुणा लाना,
कहते 'सज्जन' अब जग जाना, नींद में सोवो मती ना, नर—॥४॥



२०

(तर्ज—चल उड़ जा रे पंछी)

तू सुनले रे प्राणी ! कि जग में कोई नहीं है तेरा—॥ स्थायी॥

दुनियाँ के धन माल खजाने, और ये परिजन प्यारे,
मतलब के सब नाते रिश्ते, बिन मतलब रिपु सारे।
पुण्य पाप बस साथ चलेंगे, और सभी रह जाये,
क्यों भूला है झूठे जग में, यहाँ दो दिन का बसेरा, तू—॥ १ ॥

मोह माया में फँसकर तूने, अपना रूप भुलाया,
जिसको कहता मेरा मेरा, वह सब तो है पराया।
मैं मेरे का ज्ञान तूँ करले, नित यूँ कहते ज्ञानी,
इक दिन होगा इस दुनियाँ से, कूच तेरा डेरा, तू—॥ २ ॥

श्रद्धा ज्ञान और संयम ही हैं, जीवन को विकसाते,
उत्तम मानव भव पाकर के मूरख हैं जो गंवाते।
बुद्धिमान नर सार्थक करते, सद्गुण गण अपनाते,
'सज्जन' वे ही धन्य धन्य हैं, सब जग उनका चेरा, तू—॥ ३ ॥



२१

धन्य धन्य प्रातः स्मरणीया सती नारियाँ भारत की
धर्म देश की बलिवेदी पर चढ़ीं नारियाँ भारत की ॥ स्थायी ॥

दिव्य ज्ञान की उज्ज्वल ज्योति सरस्वती महादेवी है,
महाशक्ति की तेजोमयी, प्रतिमा श्री दुर्गा देवी है।
सुन्दरी चन्दनबाला राजिमती त्याग मूर्तियाँ भारत की—॥ १ ॥

पातिव्रत्य की विमल विभूति सीता औ सावित्री थीं,
कृष्ण भक्ति में लीन प्रेम प्रतिमा मीरा कवयित्री थीं।
मैत्रेयी गार्गी लीलावती महाविदुषियाँ भारत की—॥ २ ॥

कर्मवाद के अटल नियम पर, दृढ़ रहकर इक नारी ने,
वरण कर लिया कुष्टी वर को मयणाराजकुमारी ने।
आत्मा कर्ता भोक्ता है यह जैन संस्कृति भारत की—॥ ३ ॥

पद्मिनी जैसो शतशः नारियों, ने जौहर अपनाया था,
अपने शील की रक्षा में, जिनने निज शीश चढ़ाया था।
ऐसी दुर्गावती लक्ष्मी सी, वीर नारियाँ भारत की—॥ ४ ॥

देवी सुभद्रा महादेवी साहित्य सरस रचयित्रियाँ भी,
विजयलक्ष्मी पंडित, औ अरुणा जैसी वीर पुत्रियाँ भी।
मधुर भाषिणी सरोजनी तो, थी ही कोकिला भारत की—॥ ५ ॥

पुण्य भूमि के स्वर्ण सूर्य की ज्ञान रश्मियाँ विस्तृत हों,
मिटे अविद्यातम अन्तर् का, दिव्य ज्योतियाँ जागृत हों।
उन्नत रखें देश का मस्तक, सदा नारियाँ भारत की—॥ ६ ॥

भौतिकता की चकाचौंध में, अन्ध न बने हिन्द नारी,
अपना त्याग औ शील सुरक्षित, रख आदर्श बने नारी।
"सज्जनता" की मञ्जुल प्रतिमा, रहें नारियाँ भारत की—॥ ७॥



२२

(कव्वाली)

नहीं गया पर नहीं गया है नहीं गया पर नहीं गया।
क्या नहीं गया—?

जैनी धराते नाम हैं जिन कौन ? यह नहीं जानते।
कुदेव कुगुरु कुधर्म का मोह नहीं गया पर नहीं गया—॥ १ ॥

दर्शन करें पूजन करें बारह व्रतधारी बनें।
पर गरीब जन का खून चूसना नहीं गया पर नहीं गया—॥ २ ॥

लाखों रुपये दान करते, दानी बने हैं कर्ण से।
पर अपने नाम का मोह हृदय से नहीं गया पर नहीं गया—॥ ३ ॥

धन माल व परिवार सब सुख भोग तज साधु बने।
पर अपने पर का भेदभाव तो नहीं गया पर नहीं गया—॥ ४ ॥

पौसह सामायिक नित करें तपस्या भी करती खूब हैं।
पर विकथा करना धर्म स्थान में नहीं गया पर नहीं गया—॥ ५ ॥

विद्वान् बन वक्ता बने, धर्मोपदेशक बन गये,
अपने मन से राग द्वेष का भाव जरा भी नहीं गया; पर नहीं गया—॥६॥

स्वाध्याय जप और ध्यान करते अध्यात्म योगी बन गये,
पर 'सज्जन' कहे निज देहाध्यास तो नहीं गया पर नहीं गया—॥७॥



२३

(तर्ज—उठाओ गोवर्द्धन)

अरे मन ! इतना क्यों इतरात अरे मन——॥ स्थायी ॥

नाशवान जीवन और धन है, क्षण भर में बदलात,
तन की गति है परिवर्तनमय, छीजत दिन और रात—॥ १ ॥

चार दिवस की चारु चन्द्रिका, पुनः तमिस्रा रात,
न जाने कब हो मृत्यु का, दुःखप्रद विद्युत्पात—॥ २ ॥

झूठी है सब प्रीति जगत की, क्यों नहीं मानत तात,
आत्मानन्द में क्यों नहीं रमता, ज्यों अनुपम सुखपात—॥ ३ ॥

ज्ञान ज्योति से निज आत्मा को, देखत क्यों नहीं भ्रात,
करले शुभ उपयोग में रहकर, "सज्जन" श्रेय की बात—॥ ४ ॥



२४

(तर्ज—मन मूरख क्यों दीवाना है)

मन मूरख क्यों भरमाया है, जग जादूगर की माया है—॥ टेर ॥
जो आज सुखी देखा जाता वह कल दुःख से है घबराता,
नहीं भेद किसी ने पाया है, मन—॥१॥
जो पूर्ण स्वस्थ था अभी अभी, नहीं जानी जिसने पीड़ कभी,
मरणान्त कष्ट शिर आया है, मन—॥२॥
जिस घर में आज बजता बाजा, खाते है लोक लड्डू खाजा,
कल शोक वहाँ पर छाया है, मन—॥३॥
नहीं ! यहाँ पर कायम ठिकाना है, आखिर तो यहाँ से जाना है,
वही साथ चले जो कमाया है, मन—॥४॥
सच्चा आनन्द वह पाता है, जो ज्ञानोपयोग जगाता है,
"सज्जन" यह सखुन सुनाया है, मन—॥५॥



२५

(तर्ज—मैं तो कह दूंगी तुम्हारे मन की बतियां)

कैसे बिगड़ी रे चेतन तेरी मतियाँ,
नहीं माने कभी हित की बतियाँ—॥टेर॥
यह मोह तुझे भटकाता, चौरासी में खूब फिराता,
दुःख है अपार दिखलाता,
फिर भी तू इस संग जाता, इसकी संगति में चेतन क्षणभर मत रह,
ले जावे तुझे यह दुर्गतियाँ—॥१॥
आनन्दप्रद ज्ञान ज्योति जगाले,
जो चाहे सुख सम्पत्तियाँ—॥२॥
करले सद् उपयोग जीवन में,
यह है "सज्जन" की सम्मतियां—॥३॥



२६

(तर्ज—दादरा ताल कहरवा)

मन ! मान मेरी तू सयाना रे,—

मात पिता बन्धु परिजन सबको, छोड़ एक दिन जाना रे ॥ स्थायी ॥

राचत है विषयों में मूरख ! क्यों अपना रूप भुलाना रे— ॥ १ ॥
नरभव पाके धर्म न करता ! फिर होगा पछताना रे—॥ २ ॥
परमानन्द पद जो चाहता है, ज्ञानोपयोग जगाना रे,—॥ ३ ॥
वार वार 'सज्जन" समझावत यह अवसर नहीं आना रे—॥ ४ ॥



२७

(तर्ज—वलिहारी नव पद ध्यान की)

वलिहारी चारित्रवान की, वलिहारी—॥ टेर ॥

क्षमा खड्ग ले फौज भगावे, मोह महा बलवान की—॥१॥
मार्दव वज्र को लेकर कर में, तोड़े शिला अभिमान की—॥२॥
ऋजुता कुठार से जड़ काटत है, माया वल्लि वितान की—॥३॥
त्याग सभी को हुए अकिञ्चन, वांछा न देव विमान की—॥४॥
सत्य शौच संयम तप धारी, ब्रह्मचर्य गुणवान की—॥५॥
उपशम भाव को धारण करते, परवाह न मानापमान की—॥६॥
कर्म रूप ईंधन को झोंकत, प्रज्वलित कर वह्नि ध्यान की—॥७॥
उत्तरोत्तर शुभ अध्यवसायें, श्रेणी चढ़े गुणस्थान की—॥८॥
आत्मानन्द में रमते निशदिन, ज्योति जगी उर ज्ञान की—॥९॥
शुभ उपयोग में रहते प्रतिक्षण, वारी मैं तपोनिधान की—॥१०॥
"सज्जन" मन में रहे अभिलाषा, ऐसे मुनि गुणगान की—॥११॥



२८

(तर्ज—पिउ पिउ बोल)

प्रभु प्रभु बोल—प्रभु प्रभु बोल-प्राण पपीहा प्रभु—।।टेर।।
जीवन की इस जान्हवी में, उठे कमनीय कल्लोल— ।।१।।
रोम रोम में प्रभु को रमाले, आगे की कुछ खर्ची कमाले,
गांठ में होंगे दाम जो तेरे, तुझसे बोलेगा अनबोल— ।।२।।
प्रभु का नाम बड़ा है प्यारा, दुःखी जनों का यह है सहारा,
निश दिन प्रभु का स्मरण कर ले, प्रभु का नाम बड़ा अनमोल—।।३।।
परमानन्द पद इससे पावे, ज्ञान ज्योति मन में जग जावे,
सदुपयोग को पाकर "सज्जन" मुक्ति द्वार को झटपट खोल—।।४।।



२९

(तर्ज—दूर चला चल)

दूर चला चल तू कहीं दूर चला चल।
स्वारथी दुनियाँ से कहीं दूर चलाचल ।। स्थायी ।।

जहाँ शान्ति हो संतोष हो, संक्लेश नहीं हो,
जहाँ स्नेहमय व्यवहार हो, प्रद्वेष नहीं हो,
श्रद्धा के लिए पुष्प लगातार, चलाचल तू लगातार———।।१।।
विषयों की वह्नि हो न जहाँ संयम सरिता हो,
जिस लोक में जनता भी सच्चरिता हो,
वहाँ ज्ञान यान बैठ के पार चलाचल तू बैठ के पार चलाचल—।।२।।
सुखी हों सारे जीव, दुःख का नाम नहीं हो,
धर्म के हो कार्य अधर्म का नाम नहीं हो,
"सज्जनों" को संग लिए पार चलाचल, तू लिए पार चलाचल—।।३।।



३०

(ओ रूठे हुए भगवान्)

ओ सोये हुये प्रिय प्राण, तुम को कैसे जगाऊं।
सुनता है मेरी कौन किसको मन की सुनाऊँ ॥ स्थायी ॥

तुम तो कुमति के संग में मुझे भूल गये हो,
इसके ही झूठे प्यार में बस फूल गये हो
पर यह धोखे की टाटी है, यह याद दिलाऊँ, सुनता—॥१॥

ले जायगी तुमको नरक में निश्चय यह जान लो,
पाओगे वहां दुःख महा यह भी तो मान लो,
पछताओगे आप फिर वहां हे नाथ जताऊँ, सुनता—॥२॥

जागो जरा कुछ होश करो तुम कौन हो ? कैसे ?
भूले हो अपना रूप क्यों ? फंसे हो फन्द में कैसे ?
जागो जरा "सज्जन" कहूँ शीश झुकाऊँ, सुनता—॥३॥



३१

(तर्ज—पंछी बावरा—)

मनवा ! बावरा ! क्यों धन पर ललचाये—
क्यों धन पर ललचाये—मनवा— ॥ स्थायी ॥

स्वर्ण रजत कलधौत के पर्वत, मणिरत्न राशि मुहाये।
देख देख अपनी सब सम्पत्ति, फूला नहीं समाये, फूला—॥ १ ॥

ऐश्वर्य समृद्धि बढ़ाने, शतशः कष्ट उठाये।
निशा दिवस में प्रतिक्षण तेरा, धन चिन्ता में जाये, धन—॥ २ ॥

सुख दुःख मानापमान क्षुधा तृड्, निद्रा को ही भुलाये।
कृत्याकृत्य का भान न रहता, धन ग्रह जब लग जाये, —॥ ३ ॥

इसकी रक्षा के चिन्तन में, सुख की नींद न आये।
व्रत नियम कर्तव्य भूलकर, केवल धन को ध्याये, केवल—॥ ४ ॥

देव दुर्लभ मानव तन की, महिमा समझ न पाये।
मात्र धन चिन्ता में रहकर, अन्त समय पछताये, अन्त—॥ ५ ॥

कोटिपति और लक्षपति भी, सुख से नहीं रह पाये।
यह चञ्चल औ चपला लक्ष्मी, नगरवधू कहलाये, नगर—॥ ६ ॥

भोगान्तराय उदय हो जिसके, वह भोग नहीं पाये।
पुण्यक्षय हो जाये जिसका, वह रंक बन जाये, वह—॥ ७ ॥

पापानुबन्धी पुण्य की लक्ष्मी, पा नर पाप कमाये।
विषय कषायासक्त जीव के, धर्म उदय नहीं आये, धर्म—॥ ८ ॥

पुण्यवान् नर जन सेवा और, पुण्यार्जन कर पाये।
धन्य धन्य वे 'सज्जन' नर हैं, सर्व त्यागी बन जाये, सर्व—॥ ९ ॥



३२

(तर्ज—मेरा मन दर्पण कहलाये)

मन ! क्यों जड़ में भरमाये,
जिसको मानता है तू अपना,
वे सब यहीं रह जाये— ॥ स्थायी ॥

अस्थियों का कंकाल यह तन, ऊपर चाम चढ़ाया,
उतर जाय जिस अंग से चमड़ी, घृणा से मुँह को फिराया।
वृद्धावस्था के आने पर, विकृत सब बन जाये, मन— ॥ १ ॥

चन्द्रानन भी बनता अन्त में, तेज हीन मुरझाता,
दन्तविहीन जब मुख हो जाता, इष्ट न खाया जाता।
गन्ध शक्ति गई और नयन की, दृष्टि कम हो जाये, मन— ॥ २ ॥

हाथ काँपते पाँव भी ये, जब नहीं चलने पाते,
चंक्रमण के सारे अरमाँ मन में ही रह जाते।
यौवन में जो धर्म करे नहीं, वह पीछे पछताये, मन— ॥ ३ ॥

स्वस्थ और सशक्त है जब तक, तेरी नश्वर काया,
आत्मा का भी कार्य तू करले, इसको कैसे भुलाया।
इसका क्या विश्वास है यह तन, व्याधि-सदन कहलाये, मन— ॥ ४ ॥

अमूल्य मानव तन उत्तम कुल, महा पुण्य से पाया,
स्वर्णावसर मत व्यर्थ खो बन्धु! श्वास आया नहीं आया।
ज्ञान ज्योति में देखले स्व को, 'सज्जन' यों समझाये, मन—॥ ५ ॥

□

३३

(तर्ज—पार्श्व चिन्तामणि मेरो)

कोई नहीं है तेरा हाँ तेरा, क्यों करे बन्धु मेरा हाँ मेरा—॥ स्थायी ॥
आत्मा का तो रूप ज्ञानमय, अजर अमर पद तेरा—हाँ तेरा—॥ १ ॥
पुद्गल जड़ तू चेतन राजा, जड़ ने तुझको घेरा—हाँ घेरा—॥ २ ॥
जड़ सम्बन्ध से स्व को भूला, फिरे चतुर्गति फेरा–हाँ फेरा—॥ ३ ॥
क्रोध मान माया व लोभ के, वश हो किया यहाँ डेरा–हाँ डेरा—॥ ४ ॥
कर्म भार शिर ऊपर भारी, कैसे कटे पथ मेरा–हाँ मेरा—॥ ५ ॥
ज्ञान की ज्योनि घट में जगे जव, 'सज्जन' होगा सवेरा–सवेरा—॥ ६ ॥

□

३४

(तर्ज—भैया मेरे राखी के बन्धन को—)

वन्धु मेरे वीर वचन चित लाना,
जीवन यह सफल बनाना २ ॥ स्थायी ॥
सुधर्म गणधर जम्बू से कहते, आयुष्मन्! प्रभु यों फरमाते,
जग में कितने ? ऐसे प्राणी, अपने मन में प्रश्न उठाते।
कहाँ से आया कहाँ जाना—॥ १ ॥

कौन हूँ ? किस गति से आया, किस पुण्य से नर तन पाया,
जिनवाणी सुन तत्वज्ञान कुछ, मेरी तुच्छ बुद्धि में आया ।
कैसे उत्तम फल पाना—॥ २ ॥

गणधर गुरु कहे पाई प्रज्ञा, जानो प्रत्याख्यान परिज्ञा,
हिंसा झूंठ और चोरी छोड़ो, अब्रह्म और परिग्रह संज्ञा ।
आत्मा से दूर हटाना—॥ ३ ॥

मैत्रीभाव सब जीवों पै लाओ, गुणिजन गुण लख मोद बढ़ाओ,
दुःखी जनों पर करुणा करके, सम्यग्दर्शन शुद्ध बनाओ ।
साम्यभाव मन लाना—॥ ४ ॥

आत्मा चेतन, जड़ मय यह तन, अनेक रोगों का है निकेतन,
आत्मशुद्धि का तप ही साधन, वीर वचन मन धारो 'सज्जन'
ज्ञान प्रदीप जगाना—॥ ५ ॥



३५

ध्यान धर ले प्रभु का हो जायेगा भव पार ।
ज्ञान करले आतम का मिट जायेगा अन्धकार ॥ स्थायी ॥

मोह वश क्यों पड़ा प्राणी
यह दुनिया है सभी फानी
झूठा परिजन का प्यार ॥ १ ॥

क्षणिक तन धन व यौवन है
पथिक थोड़ा सा जीवन है
क्यों भरता पाप भण्डार ॥ २ ॥

अगर है मोक्ष को पाना
तो जिन चरणों में चित्त लाना
"सज्जन" कहते पुकार ॥ ३ ॥

